

मूल पालि
महापरिनिर्वाण सूत्र
(हिन्दी अनुवाद सहित)

सम्पादक
भिन्नु कित्तिमा

प्रकाशक
ऊ० चोजन्
अक्याव (वर्मा)

२४८५ रु० स०
१९९८ वि० स०

प्रथम संस्करण
१०००

}

}

मूल्य १

Published by
U Kraw / un
Alyab
Burma

Printed by
A Bose,
at The Indian Press Ltd
Benares Branch

निवेदन

आज में "महास्थविर महावीर ग्रन्थमाला" के इस तृतीय पुष्प महा परिनिर्वाण सूत्र को पाठकों के सम्मुख उपस्थित करता हूँ। इस सूत्र में मूल पालि के साथ हिन्दी अनुवाद भी रखा गया है। ताकि मूल पालि न जाननेवालों को भी मूल का आनन्द मिल सके।

इस सूत्र में उत्तरी भारत के प्राचीन मगध, वैशाली, कपिलवस्तु, कुशीनारा आदि तत्कालीन प्रजातन्त्र राज्यों की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक अवस्था का सुन्दर विवरण है। दूसरे शब्दों में यह सूत्र शुद्ध कालीन भारतके प्रजातन्त्र राज्यों का एक प्रामाणिक इतिहास है। अतः इस पर प्रकाश डालने के लिए एक विद्वत्तापूर्ण विस्तृत ऐतिहासिक भूमिका की अनिवार्य आवश्यकता थी किन्तु यर्मा भाषा भाषी होने के कारण मैं ऐसा नहीं कर सका।

मूल पालिभाषा की यथाशक्ति शुद्ध शुद्ध छापने की कोशिश की गई है। फिर भी यदि कुछ त्रुटियाँ रह गई हों तो आशा है कृपालु पाठक इस ओर विशेष ध्यान न दे कर पूज्य तथागत की उन शिक्षाओं और आदेशों को, जो अमीर गरीब सबके लिए बल्याणप्रद हैं, ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे।

इस सूत्र का हिन्दी अनुवाद प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् त्रिपिटकाचार्य महामहिम्न राहुल सांकृत्यायन जी और भिक्षु जगदीश काश्यप जी एम० ए० द्वारा अनूदित 'दीघनिकाय' से लिया गया है। इसके लिए मैं इन विद्वानों का कृतज्ञ हूँ।

मुझे यह उमीद न थी कि यह पुस्तक इतनी जल्दी प्रकाशित हो सकेगी, किन्तु अराकान (यर्मा) निवासी धन्धालु उपासक श्री ऊ० चोजन् (U Kyaw Zan, Akyab, Arakan) ने धन द्वारा सहायता दे कर मेरी हार्दिक इच्छा पूरी की। इसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता।

अन्त में मेरे अपने पाठकों को धन्यवाद देना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनकी गुण ब्राह्मकता के फल स्वरूप समय समय पर बौद्ध साहित्य को राष्ट्र भाषा में प्रकाशित करने का अवसर मिलता रहा है।

यर्मा बौद्ध विहार,
सारनाथ (बनारस)

१८-७-४१

विनीत

भिक्षु कित्तिमा

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—वज्रियों के विरुद्ध अज्ञातशत्रु राजा	१-२
२—हानि से बचने के उपाय	३-१७
३—बुद्ध की अन्तिम यात्रा	१८
४—बुद्ध के प्रति सारिपुत्र का उद्गार (नालंदा में)	१९-२२
५—भगवान पाटलिग्राम में (वर्तमान पटना)	२३
६—दुराचर का दुष्परिणाम	२५
७—सदाचर का सुपरिणाम	२६ २७
८—पाटलिपुत्र का निर्माण	१८-३३
९—पाटलिपुत्र प्रधान नगर होगा	३०
१०—पाटलिपुत्र के तीन शत्रु	३०
११—गौतम द्वार	३२
१२—गौतम-तीर्थ	३२
१३—कोटिग्राम में	३४
१४—जानने योग्य चार आर्य सत्य	३४
१५—नातिका के गिञ्जकावसथ में	३६
१६—धर्म आदर्श	३६
१७—वैशाली में	४१
१८—अम्बपाली गणिका का भोजन	४१
१९—लिच्छवी	४४
२०—वेणुव ग्राम में चतुर्मास वास	४८
२१—सख्त बीमारी	४९
२२—आचार्य मुष्टि (=रहस्य) नहीं है	५०
२३—आत्मशरण होकर रहो	५१
२४—चाणाल चैत्य में	५२
२५—निवाण की तैयारी	५५
२६—भूकम्प के आठ हेतु	६०, ६१
२७—आठ परिपद	६२

विषय	पृष्ठ
२८—आठ अभिभायतन (योग)	६३
२९—आठ विमोक्ष	६६
३० - कुचिनारा की ओर	७९
३१—भयङ्गु ग्राम में	८०
३२—भोगनगर में	८२
३३—महाप्रदेश (कसौटी)	८२
३४—पावा में	८६
३५—छुद छोनार का अन्तिम भोजन	८६
३६—ककुषा नदी	९०
३७—पुक्कुस (मल्ल)	९१
३८—आतुमा के भुसागर की घटना	९४
३९—दुशाला का दान	९७
४०—जीवन की अन्तिम घड़ियाँ	१०३
४१—हिरण्यवती नदी	१०४
४२—लुङ्गवे शाल वृक्षों के बीच में	१०४
४३—दशनीय स्थान (चार बौद्ध तीर्थ)	१०८
४४—छियों के प्रति मित्तुओं का बर्ताव	१०९
४५—चक्रवर्ती राजा की दाहक्रिया	११०
४६—आनन्द के गुण	११३
४७—चक्रवर्ती के चार गुण	११६
४८—महासुदशन-जातक	११८
४९—सुभद्र की प्रव्रज्या	१२२
५०—अन्तिम उपदेश	१२६
५१—निर्वाण	१३२
५२—महाकार्यप को दशन	१४३
५३—दाहक्रिया	१४६
५४—स्तूप निमाण	१४७
५५—पुरातत्व लेख समूह	१५४ १५७

महापरिनिब्बान सुत्तं



(१) एव मे सुत—एक समय भगवा राजगहे विहरति गि...
 पव्वते । तेन खो पन समयेन राजा मागधो अजातशत्रु वेंदि-
 पुत्तो वज्जी अभियातु कामो होति । सो एवमाह—अहं हि वेंदि-
 एव महिद्धिके, एव महानुभावे, उच्छिज्जामि वज्जी विनापन्ना...
 अनपव्यसन आपादेस्सामि वज्जी, ति' ।

(१) ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें विहार करते थे ।

उस समय राजा मागध अजातशत्रु वैदेही-पुत्र* वज्जीपर चढ़ाई करना चाहता था । वह ऐसा कहता था—'मैं इन एवमें (महानुभाव शाला), = ऐसे महानुभाव, वज्जियोंको उच्छिन्न करूँगा वज्जियोंको उनपर आफत ढाऊँगा ।'

* गंगा (?) के घाटके पास आधा योजन अनातशत्रु...
 योजन लिटवियोंका । । वहाँ पर्वत के पास (= दल)के...
 उतरता था । उसको सुनकर अजातशत्रुके—'आज जाऊँ...
 एक राय, एक मस ही पहले ही जाकर सब ले लेते थे । समाचारके पा क्रुद्ध हो चला आता था । वह दूसर का...
 उसने अत्यन्त क्रुपित हो ऐसा सोचा—'गण (= प्रजा) (उनका) एक भी प्रहार बेकार नहीं जाता । किसी एक...
 करना अच्छा होगा । ' । (सोच) उसने वर्षकार...

† वर्तमान मुजफ्फरपुर, बम्बारन और दरभंगा...

(२) अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो वस्सकार ब्राह्मण मागध महामत्त आमन्तेसि । “एहि त्व ब्राह्मण ! येन भगवा, तेनुप-सङ्गम । अपसङ्गमित्वा मम वचनेन भगवतो पादे सिरसा वन्दाहि । अप्पा वाध अप्पा तद्द लहुठान चल फासुविहार पुच्छ—‘राजा भन्ते ! मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो भगवतो पादे सिरसा वन्दति । अप्पा वाध अप्पा तद्द लहुठान चल फासुविहार पुच्छती, ति’ । एवञ्च वेदेहि—‘राजा भन्ते ! मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो वज्जी अभियातु-फामो सो एवमाह—‘अहहि मे वज्जी एव महिद्धिके एव महानुभावे उच्छिज्जामि वज्जी विनासेस्सामि वज्जी अनयव्यसन आपादस्सामि वज्जी, ति’ । यथा ते भगवा व्याकरोति । त साधुऊ उग्गहेत्वा मम आरोचेय्यासि । न हि तथागता वितथ भणन्ती, ति” ।

(३) ‘एव भो’, ति खो वस्सकारो ब्राह्मणो मागध महामत्ता रञ्जो मगधस्स अजातसत्तुस्स वेदेहिपुत्तस्स पटिस्सुत्वा भद्धानि भद्धानि यानानि योजेत्वा भद् भद् यान अभिरूढित्वा भद्देहि भद्देहि यानेहि राज-गहम्हा निग्ग्यासि । येन गिञ्जकूटो पब्बतो, तेन पायासि । यावत्तिका

(०) तत्र० अजातशत्रु० ने मगधके महामात्म्य (= महामत्री) चर्षकार ब्राह्मणसे कहा—

“आओ ब्राह्मण ! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाओ । जाकर मेरे वचनसे भगवान्के पैरोंमें शिर से वन्दना करो । आरोग्य अल्प आतरु, लघु उत्थान (= फुर्ती), सुख विहार पृश्ने—‘भन्ते । राजा० वन्दना करता है, आरोग्य० पूछता है ।’ और यह कहो—‘भन्ते । राजा० वज्जियोंपर चर्पाई करता चाहता है, वह ऐसा कहता है—‘मैं इन० वज्जियोंको उच्छिन्न करूँगा० ।’ भगवान् जैसा तुमसे बोलें, उसे यादकर (आकर) मुझसे कहो, तथागत अ यथार्थ (= वितथ) नहीं बोलता करते ।”

(३) “अन्धा भा ।” कह वर्षकार ब्राह्मण अच्छे अच्छे यानोंको जुतगाकर, बहुत अच्छे यानपर आरूढ हो, अच्छे यानोंके साथ, राजगृहसे निकला, (और) जहाँ शुभ्रकूट-पर्वत था, वहाँ चला । जितनी यानकी भूमि थी, उतना यानसे जाकर,

यानस्त भूमियानेन गन्त्वा याना पचोरोहित्वा पत्तिकोव येन भगवा
तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि । सम्मोदनीय
कथ सारणीय वीतिसारेत्वा एकमन्त निसीदि । एकमन्त निसिन्नो खो
वस्सकारो ब्राह्मणा भगध महामत्तो भगवन्त एतदवोच—“राजा भो
गोतम ! मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो भो तो गोतमस्स पादे सिरसा
वन्दति । अण्णा वाध अण्णा तद्ध लहुठान बल फासुविहार पुच्छति” ।
एवञ्च वदेति—“राजा भो गोतम ! मागधो अजातमत्तु वेदेहिपुत्तो वज्जी
अभियातुकामो सो एवमाह—‘अह हि मे वज्जी एव महिद्धिके एव
महानुभावे उच्छिज्जामि वज्जी विनासेस्सामि वज्जी अनपव्यसन
आपादेस्सामि वज्जी, ति” ।

(४) तेन खो पन समयेन आयस्सा आनन्दो भगवतो पिठितो ठितो होति
भगवन्त बीजयमानो । अथ खो भगवा आयस्मन्त आनन्द आमन्तेसि,

[१] “किन्ति ते आनन्द ! सुत वज्जी अभिएह सन्निपाता
सन्निपात बहुला, ति ?

“सुतमेत भन्ते ! वज्जी अभिएह सन्निपाता सन्निपातबहुला, ति” ।

याव किवञ्च आनन्द ! वज्जी अभिएह सन्निपाता सन्निपात
बहुला भविस्सन्ति, बुद्धियेव आनन्द ! वज्जीन पाटिकह्वा ने
परिहानि ।

यानसे उतर पैदल ही, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्के साथ
समोदनकर एक ओर बैठे, एक ओर बैठकर भगवान्से बोला—“भो गोतम ।

राजा० आप गोतमपर पैरोंमें शिरसे वन्दना करता है ० । ० वज्जियोंको
उच्छिन्न कहेंगा ० ।”

(४) “उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवान्के पीछे (रखे) भगवान्के
पसा भल रहे थे । तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको सन्निहित किया—

[१] “आनन्द ! यह है वज्जी (मम्मतिके लिये) बरानर बैठक
(= सन्निपात) करते हैं =

[२] किन्ति ते आनन्द ! सुत, वज्जी समग्गा सन्नपत्तन्ति । समग्गा वुठहन्ति । समग्गा वज्जी करणीयानि करान्ती, ति ?

सुतमेत भन्ते ! 'वज्जी समग्गा सन्नपत्तन्ति, समग्गा वुठहन्ति, समग्गा वज्जी करणीयानि करान्ती, ति' ।

याव कियञ्च आनन्द ! 'वज्जी समग्गा सन्नपत्तिस्मन्ति, समग्गा वुठहिस्मन्ति, समग्गा वज्जी करणीयानि करिस्मन्ति, बुद्धियेय आनन्द ! वज्जीन पाटिक्कहा, नेा परिहानि' ।

[३] किन्ति त आनन्द ! सुत 'वज्जी अपञ्चत्त न पञ्चपेन्ति, पञ्चत्त न समुच्छिन्दन्ति, यथा पञ्चत्ते पाराणे वज्जी धम्म समदाय वत्तन्ती, ति ?'

सुतमेत भन्ते ! 'वज्जी अपञ्चत्त न पञ्चपेन्ति, पञ्चत्त न समुच्छिन्दन्ति, यथा पञ्चत्ते पाराणे वज्जी धम्म समदाय वत्तन्ती, ति' ।

याव कियञ्च आनन्द ! 'वज्जी अपञ्चत्तं न पञ्चपेस्सन्ति, सुना हे, भन्ते । वच्चा धरावर० ।'

'आनन्द ! जय तत्र वज्जी वैठरु करत रहेंग = सन्निपात बहुत रहगे, (तत्र तत्र) आनन्द । वच्चियासी वृद्धि ही समझना, जानि नहीं ।

[२] 'क्या आनन्द । तू सुना है, वज्जी एक ही वैठरु करत हैं, एक ही उत्थान करत हैं, वज्जी एक ही करणीय (= कर्त्तव्य) को करते हैं ?'

'सुना है, भन्ते । ० ।'

'आनन्द ! जय तत्र ० ।

[३] 'क्या ० सुना है, वच्चा अ प्रसत्त* (= नैरकान्ती) को प्रसत्त

* "पहले न किये गये शुल्क या बलि (= कर) या दंड लेनेवाले अप्रसत्त (काम) करते हैं । । पुराना वज्जिधम यहाँ पहले वज्जिराजा लोग—'यह चोर है = अपराधी है, (कह) लाकर दिखलाने पर इस चोरको बांधा'— न कह विनिश्चय महामात्य (= 'याया धीर) को देते थे, वह विचारकर अचार हानेपर छोड़ देते थे यदि चोर होना, तो अपने

पञ्जत्त न समुच्छिन्दिस्सन्ति, यथा पञ्जत्ते पोरारेणे वज्जी धम्मे समादाय वत्तिस्सन्ति, वुद्धियेव आनन्द ! वज्जीन पाटिकह्वा, नेा परिहानि' ।

[४] किन्ति ते आनन्द ! सुत्त—'वज्जी ये ते वज्जीन वज्जी महल्लका, ते सक्करोन्ति गरु करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति तेसञ्च सोतब्ब मञ्जन्ती, ति ?

सुत्तमेत भन्ते ! 'वज्जी ये ते वज्जीन वज्जी महल्लका, ते सक्करोन्ति गरु करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति तेस च सोतब्ब मञ्जन्ती, ति' ।

याव किञ्चञ्च आनन्द ! 'वज्जी ये ते वज्जीन वज्जी महल्लका, ते सक्करिस्सन्ति गरु करिस्सन्ति मानेस्सन्ति पूजेस्सन्ति तेस च सोतब्ब मञ्जिस्सन्ति, वुद्धियेव आनन्द ! वज्जीन पाटिकह्वा नेा परिहानि' ।

[५] किन्ति ते आनन्द ! सुत्त—'वज्जी या ता कुलित्थियो कुलकुमारियो ता न श्चोकस्स पसय्ह वासेन्ती, ति' ?

(= विहित) नहीं करत, प्रज्ञप्त (= विहित) का उच्छेद नहीं करत । जैसे प्रज्ञप्त है, वैसे ही पुराने पुराने वज्जि धर्म (= ०नियम) को ग्रहण कर, वर्तते हैं ?

"भन्ते ! सुत्ता है ।"

"आनन्द ० । जव तक कि ० ।"

[४] "कथा आनन्द ! तूने सुना है—वज्जियोके जो महल्लक (= वृद्ध) हैं, उनका (वह) सत्कार करते हैं, = गुरुकार करते हैं, मानते हैं, पूजते हैं, उनकी (घात) सुननें योग्य मानते हैं ।"

"भन्ते ! सुत्ता है ० ।"

"आनन्द ! जव तक कि ० ।"

कुछ न कहकर "यत्तद्वारिकको दे देते थे । वह भी विचारकर अचोर होनेपर छोळ देते थे, यदि चोर होता तो सूत्रधारको दे देते थे । वह भी विचारकर अचार होनेपर छोळ देते थे, यदि चोर होता तो श्रष्टकुलित्थियो दे देते । वह भी वैसा ही कर सेनापतिके, सेनापति उपराजको, और उपराज राजा (= गणपति को । राजा विचारकर यदि अचोर होता तो छोळ देता । यदि चोर (= अपराधी) होता, तो प्रवेणी पुस्तक बँचवाता । उसमें—जिसने यह किया, उसको ऐसा दंड हो—मिला रहता है । राजा उससे अपराधको उससे मिलाकर - करता ।"—अट्टकथा ।

सुप्तमेत भन्ते । 'वज्जी या ता कुलित्तियया कुल कुमारिया ता न
श्रोफस्स पसस्स वासेन्ती, ति' ।

याव किञ्च आनन्द ! वज्जी या ता कुलित्तियया कुल-कुमारिया
ता न श्राफस्स पसस्स वामम्मन्ति, बुद्धियेव आनन्द ! वज्जीन पाटिकह्वा
नेा परिहानि' ।

[६] किन्ति ते आनन्द ! सुत—'वज्जी यानि तानि वज्जीन वज्जी
चत्तियानि अम्भन्तरानि चेव बाहिरानि च । तानि सक्करोन्ति गरु
करोन्ति मानन्ति पूजेन्ति । तेस च दिन्न पुब्ब कत पुब्ब धम्मिक बलि
नेा परिहापेन्ती, ति' ?

सुप्तमेत भन्ते ! 'वज्जी यानि तानि वज्जीन वज्जी चत्तियानि
अम्भन्तरानि चेव बाहिरानि च । तानि सक्करोन्ति गरु करोन्ति मानेन्ति
पूजेन्ति । तेस च दिन्न पुब्ब कत पुब्ब धम्मिक बलि नेा परिहापेन्ती, ति' ।

याव किञ्च आनन्द ! 'वज्जी यानि तानि वज्जीन वज्जी
चत्तियानि अम्भन्तरानि चेव बाहिरानि च । तानि सक्करिस्सन्ति गरु-
करिस्सन्ति मानेस्सन्ति पूजेस्सन्ति । तेसञ्च दिन्न-पुब्ब कत पुब्ब
धम्मिक-बलि नेा परिहापेन्ति । बुद्धियेव आनन्द ! वज्जीन पाटिकह्वा
नेा परिहानि ।

[५] "क्या० सुना है—जो वह कुल ब्रियों हैं, कुल-कुमारियों हैं, उन्हें (वह)
धीनकर जगदस्ती नहीं बसाते ?"

"भन्ते । सुना है ।"

"आनन्द ! ० जग तर ० ।"

[६] "क्या ० सुना है—बज्जियोंके (नगरके) भीतर या बाहरके जा चेत्य
(=चौग=देव-स्थान) हैं, वह उनका सत्कार करते हैं, ० पूजते हैं । उनके लिये
पहिले क्रिये गये दानके, पहिल ही गई धर्मानुसार बलि (=भृत्ति) को, लोप
नहीं करते ?"

"भन्ते । सुना है ० ?"

"जग तर ० ।"

[७] किन्ति ते आनन्द ! सुत्त—‘वज्जीन अरहन्तेसु धम्मिका रक्खा वरण गुत्ति सुसंविहिता । किन्ति अनागता च अरहन्तो विजित आगच्छेय्यु । आगता च अरहन्तो विजिते फासुविहरेय्युन्ति ?’

सुत्तमेत भन्ते ! ‘वज्जीन अरहन्तेसु धम्मिका रक्खा वरण गुत्ति सुसंविहिता । किन्ति अनागता च अरहन्तो विजित आगच्छेय्यु । आगता च अरहन्तो विजिते फासुविहरेय्युन्ति ।’

याव किवञ्च आनन्द ! ‘वज्जीन अरहन्तेसु धम्मिका रक्खा वरण गुत्ति सुसंविहिता भविस्सन्ति । किन्ति अनागता च अरहन्तो विजित आगच्छेय्यु । आगता च अरहन्तो विजिते फासु-विहरेय्युन्ति । बुद्धियेव आनन्द ! वज्जीन पाटिकुह्वा, नो परिहानी, ति’ ।

(५) अथ खो भगवा वस्सकार ब्राह्मण मगध महामत्त आमन्तेसि—
“एकमिदाह ब्राह्मण ! समय वेसालिय विहरामि स्नानन्दरे चेतिये, तत्राह वज्जीन इमे ‘सत्त अपरिहानिये धम्मे’ टेसेसि । याव किवञ्च ब्राह्मण ! इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा वज्जीसु ठस्सन्ति ।

[७] “क्या सुना है,—वज्जी लोग अर्हता (=पूज्यां) की अच्छी तरह धार्मिक (= धर्मानुसार) रक्षा=आवरण=गुप्ति करते हैं। किसलिये? भविष्यमें अर्हत् राज्यमें आवें, आये अर्हत् राज्यमें सुखसे विहार करें।”

“सुना है, भन्ते । ० ।”

“जर तरु ० ।”

(५) तत्र भगवान्ने ० घर्षकार ब्राह्मणके संज्ञाधित किया—

“ब्राह्मण । एक समय में वैशालीके स्नानन्दर-चैत्यमें विहार करता था । वहाँ में वज्जियों के यह सात अपरिहाणीय धर्म (=अपतनके नियम) बड़े । जर तरु ब्राह्मण । यह सात अपरिहाणीय धर्म वज्जियाम रहेंग, इन सात अपरिहाणीय

इमेसु च सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मेषु वज्जी सट्ठिस्सिस्सन्ति । वुद्धियेव
ब्राह्मण ! वज्जीन पाटिक्ह्वा, नेा परिहानी, ति ।”

(६) एव वुत्ते वस्मकारो ब्राह्मणो मगध महामत्तो भगवत्त एतदवोच—
“एरुमेकेनेपि भो गोतम ! अपरिहानियेन धम्मैन समन्नागतान वज्जीन
वुद्धियेव पाटिक्ह्वा नेा परिहानि । ज्ञेपनवादा सत्तहि अपरिहानियेहि
धम्मेहि ? अकरणीया च भो गोतम ! वज्जीन रञ्जा मागधेन अजात
सत्तुना वेदेहिपुत्तेन यदिद युद्धस्स अञ्जत्र उपत्तापनाय अञ्जत्र
मिथुभेदाय” । “हन्द च दानि मय भो गोतम ! गच्छाम । बहुक्किच्चा
मय बहु करणीया, ति ।”

“यस्म दानि त्व ब्राह्मण ! काल मञ्जसी, ति” ।

(७) अथ खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगध महामत्तो भगवत्तो भासित
अभिनदित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना पक्कापि ।

असोमिं वज्जी (लोग) दिरन्नाई पळेंगे, (तब तक) ब्राह्मण ! धनियाकी वृद्धि ही
समझना, हानि नहीं ।”

(६) ऐसा कहने पर० वर्षकार ब्राह्मण भगवान्से बोला—

“हे गोतम । (इनमसे) एक भी अपरिहाणीय धर्ममे वज्जियोंकी वृद्धि ही
समझनी होगी, सात अ परिहाणीय धर्मोंकी ता बात ही क्या ? हे गोतम । राजा ०
को उपलाप (=रिश्वत देना), या आपसमे फूटके छोड़, युद्ध करना ठीक नहीं ।
हन्त ! हे गोतम । अब हम जाते हैं, हम बहु वृत्त्य=बहु करणीय (=बहुत
कामनाले) हैं ०”

“ब्राह्मण ! जिसना तू काल समझता है ।”

(७) तब मगध-महामात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान्के भाषणका अभिनन्दन
कर, अनुमोदनकर, आत्मसे उठकर, चला गया* ।

* अ क “राजाके पास गया । राजाके उससे पूछा—‘आचार्य ! भगवान्ने
क्या कहा ?’ । उसने कहा—‘भो ! धर्मके कथनसे तो वज्जियोंके किता प्रकार भो
लिया नहीं जा सकता है, उपलाप (=रिश्वत) और आपसमें फूट होनेसे लिया जा

(८) अथ खो भगवा अचिर पक्कन्ते वस्सकारे ब्राह्मणे मगघ महामत्ते आयस्मन्त आनन्द आमन्तेसि—“गच्छ त्व आनन्द ! यावत्तिका भिक्खु राजगह उपनिस्साय विहरन्ति । ते सब्बे उपट्ठानसालाय सन्निपातेही, ति ।”

(८) तत्र भगवान् ० वर्षकार ब्राह्मणके जानके थोळी ही देर बाद आयुष्मान् आनन्दको संगोधित किया—

‘जाओ, आनन्द ! तुम जितने भिक्षु राजगृहके आसपास विहरत हैं, उन सबको उपस्थान-शालामे एकत्रित करो ।’

सकता है । तत्र राजाने कहा—‘उपलापन से हमारे हाथी घोड़े नष्ट होंगे, भेद (= फूट) से ही पकळना चाहिये ।०।’

‘तो महाराज ! बज्जियोंके लेकर तुम परिषद्में बात उठाओ । तब मैं—‘महाराज ! तुम्हें उनसे क्या है ! अपनी कृपि, वाणिज्य करके यह राजा (= प्रजातन्त्रके सभासद्) जायें—कहकर खला जाऊँगा । तब तुम बोलना—‘क्योजी ! यह ब्राह्मण बज्जियोंके सम्बन्धमें होती बातको रोकता है’ । उसी दिन मैं उन (= बज्जियों) के लिये भेंट (= पय्यांकार) भेजूँगा, उसे भी पकळकर मेरे उपर दोषारोपण कर, बघन, ताळन आदि न कर, छुरेसे मुण्डन करा मुझे नगरसे निकाल देना । तब मैं कहूँगा—‘मैंने तेरे नगरमें प्राकार और परिणाम (= राई) बनवाई है, मैं दुबल तथा गम्भीर स्थानों को जानता हूँ, अब जल्दी (तुम्हें) सीधा करूँगा’ । ऐसा सुनकर बोलना—‘तुम जाओ’ ।

‘राजाने सत्र किया । लिच्छवियोंके उसके निकालने (= निष्क्रमण) को सुनकर कहा—‘ब्राह्मण मायावी (= शठ) है, उसे गंगा न उतरने दो ।’ तब किन्हीं किन्हींके—‘हमारे लिये कहनेसे तो वह (राजा) ऐसा करता है’ कहनेपर—‘तो मर्यो ! आने दो’ । उसने जाकर लिच्छवियों द्वारा—‘किस लिये आये ?’ पूछनेपर, वह (सब) हाल कह दिया । लिच्छवियोंके—‘थोळीसो रातके लिये इतना भारी दंड करना युक्त नहीं था’ कहकर—‘वहाँ तुम्हारा क्या पद (= स्थानान्तर) था’—पूछा । ‘मैं विनिश्चय महामात्य था’—(कहनेपर)—‘यहाँ भो (तुम्हारा) बहो पद रहे’—कहा । वह सुन्दर तौरसे विनिश्चय (= इसाफ) करता था । राजकुमार उसके पास विद्या (= शिल्प) ग्रहण करते थे । अपने मुखोसे प्रतिष्ठित हो जानेपर वह एक दिन एक लिच्छवीको एक आर ले जाकर—

(९) 'एव भन्ते'ति खो आयस्मा आन'दो भगवतो पटिस्मुत्वा याचतिका भिरसु राजगह उपनिस्माय विहरन्ति, ते मध्ये उपहानसालाय सन्निपातेत्या येन भगवा तेनुपसङ्गमि । उपसङ्गमित्वा भगवन्तं श्रिवादेत्वा एकमन्त श्रद्धासि । एकमन्त वितो ग्यो आयस्मा आन'दो भगवत्त एतद्वोच—“सन्निपतितो भन्ते ! भिवसु संघो । यस्स दानि भन्ते ! भगवा काल मञ्जसी, ति ।”

(९) “श्रद्धा, भन्त ।”०।

“भन्ते । मित्रसंघो पत्रित कर दिया, अब भगवान् जिसका समय ममर्गें ।”

खेत (= वेदार, क्यारा) जोतते हैं । 'हाँ जोतते हैं' । 'दो बैल जोतकर!'—'हाँ, दो बैल जोतकर'—बहकर लौट आया । तब उसको दूमरेके—'आचार्य ! (उसने) क्या कहा ?'—पूछनेपर, उसने यह कह दिया । (तब) 'मेरा विश्वास न कर, यह ठीक ठीक नहीं बतलाता है' (सोच) उसने बिगाळ कर लिया । ब्राह्मण दूसरे दिन भा एक लिच्छवीको एक ओर ल जाकर 'किस व्यजन (= तमन, तरकारी) से भागन किया' पूछकर लौटनेपर, उससे भी दूसरेने पूछकर, न विश्वासकर बैठेही बिगाळ कर लिया । ब्राह्मण किसी दूसरे दिन एक लिच्छवीको एकान्त में लेजाकर—'बल्ले गराब हो न ?'—पूछा । 'किसने ऐसा कहा ?' 'अमुक लिच्छवाने ।' दूसरेको भी एक ओर लेजाकर—'तुम कायर हो क्या ?' 'किसने ऐसा कहा' अमुक लिच्छवाने ।' इस प्रकार दूसरेके न कहे हुएको कहते तान वध (४८३—४८० ई पू) में उन राजाओंमें परस्पर ऐसा फूट डाल दा, कि दो आदमी एक रास्तेसे भी न जाते थे । वैसा करके, जमा होनेका नगारा (= सन्निपात मेरी) बजवाया ।

लिच्छवी—'मालिक (= ईश्वर) लोग जमा हों'—बहकर नहीं जमा हुए । तब उस ब्राह्मणने राजाके जल्दी आनेके लिये खर (= शासन) भजा । राजा सुनकर सैनिक नगारा (= बलमेरी) बजवाकर निकला । वैशालीवालों ने सुनकर मेरी बजवाई—'आओ चलें' रामागे गगा न उतरने दें' । उसको भी सुनकर—'देव-राज (= सुर राज) लोग जायें' आदि कहकर लोग नहीं जमा हुए । (तब) मेरी बजवाई—'नगरमें सुनने न दे, (नगर) द्वार बन्द करके रहें' । एक भी नहीं जमा हुआ । (राजा अजात शत्रु) खुले द्वारोंसे ही सुसकर, सबको तबाह कर (= अनय-व्यसन पापेत्वा) चला गया ।

(१०) अथ खो भगवा उट्टायामना येन उपट्टानसाला, तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा पञ्चत्ते आसने निसीदि । निस्सज्ज खो भगवा भिक्खू आपन्तेसि—“सत्त वो भिक्खवे ! अपरिहानिये धम्मे देसेस्सामि । त सुणाय साधुक मनसिकरोथ भासिस्सामी,” ति ।

‘एव भन्ते,’ ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चसोसु ।

(११) भगवा एतदवोच ।

[१] “याव किवञ्च भिक्खवे ! भिक्खू अभिण्ह सन्निपाता सन्निपात बहुला भविस्सन्ति, बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खून पाटिकुट्ठा नो परिहानि ।” [२] “याव किवञ्च भिक्खवे ! भिक्खू समग्गा सन्निपतिस्सन्ति, समग्गा बुद्धिस्सन्ति, समग्गा संघ करणीयानि करिस्सन्ति । बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खून पाटिकुट्ठा, नो परिहानि ।”

[३] “याव किवञ्च भिक्खवे ! भिक्खू अपञ्चत्त न पञ्चपेस्सन्ति, पञ्चत्त न समुच्छिन्दिस्सन्ति, यथा पञ्चत्तेसु सिक्खापदेसु समादाय वत्तिस्सन्ति । बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खून पाटिकुट्ठा नो परिहानि ।”

[४] “याव किवञ्च भिक्खवे ! ये ते भिक्खू थेरा रत्तञ्जू चिरपव्वजिता

(१०) तत्र भगवान् आसनसे उठकर जहाँ उपस्थान-शाला थी, वहाँ जा, विये आसन पर बैठे । बैठ कर भगवान् ने भिक्षुओंको संबोधित किया—“भिक्षुओ ! तुम्हें सात अपरिहाण्यो धर्म उपदेश करता हूँ, उन्हें सुनो कहता हूँ ।”

“अच्छा, भन्ते ।”

(११) “[१] भिक्षुओ ! जब तक भिक्षु धार धार (=अभीक्षण) बैठक करनेवाले=सन्निपात-बहुल रहेंगे, (तत्र तत्र) भिक्षुओ ! भिक्षुओंकी वृद्धि समझना, हानि नहीं । [२] जब तक भिक्षुओ ! भिक्षु एक हो बैठक करेंगे, एक हो उत्थान करेंगे, एक ही सधके करणीय (कामो) को करेंगे, (तत्र तत्र) भिक्षुओ ! भिक्षुओंकी वृद्धि ही समझना, हानि नहीं । [३] जब तक ० अप्रज्ञप्तो (=अविहितो) को प्रज्ञप्त नहीं करेंगे, प्रज्ञप्तका उच्छ्रेय नहीं करेंगे, प्रज्ञप्त शिक्षा पदो (=विहित भिक्षु नियमों) के अनुसार धर्तगे जे तत्र ० जे उह रत्तञ्जू (=धर्मानुगामी) ।

मंत्र परिष्ठापका, ते मन्त्रकर्मिस्मन्ति, गम् दग्मिस्सन्ति, मानेस्मन्ति, पूजेस्सन्ति । तसञ्च सोतञ्च मञ्चिस्सन्ति । बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खुने पाटिकुत्ता नेो परिहानि ।” [५] “याव किञ्चञ्च भिक्खवे ! भिक्खु उप्पन्नाय तसहाय पेनोन्मविषाय न वसे गिच्चिदस्सन्ति । बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खुन पाटिकुत्ता ना परिहानि ।” [६] “याव किञ्चञ्च भिक्खवे ! भिक्खु आरञ्चनेसु सेनासनेसु सापरता भविस्सन्ति । बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खुन पाटिकुत्ता ना परिहानि ।” [७] “याव किञ्चञ्च भिक्खवे ! भिक्खु पञ्चत्तन्नेव सति उप्पह्वेस्मन्ति । किन्ति अनागता च पेमला सन्नञ्चारी आगच्छेत्थु, आगता च पेसला सन्नञ्चारी फासुविहरय्युत्ति । बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खुने पाटिकुत्ता नेो परिहानि ।”

“याव किञ्चञ्च भिक्खवे ! इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा भिक्खुसु वस्सन्ति । इमेसु च सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मसु भिक्खु सन्दिस्सि स्सन्ति । बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खुन पाटिकुत्ता ना परिहानि ।”

(१२) अपरेपि वो भिक्खवे ! सत्त अपरिहानिये धम्म देसेस्सामि । त सुणाय साधुक मनसिकरोय भासिस्सामी, ति । ‘एव भन्त,’ ति खो तं भिक्खु भगवतो पच्चस्सोसु । भगवा एतद्वोच—[१] याव किञ्चञ्च चिरप्रजित्त, मक्क पिता, सञ्चक गायक, खरिक्क भिक्खु दे, उप्पत्ता सत्कार करेगे, गुरुकार करेगे, मानेगे, पूजेगे, वन (की वात) को सुनन्त वाग्ग मानेगे ० । [५] जय तक् पुन पुन उप्पत्त हानेवाली तुप्पणन वशमे नरी पळेगे ० । [६] जय तक् ० भिक्खु, आरम्भक शय्यामम (= वनरी कुटियो) की इन्द्वावाले रहेंगे ० । [७] जय तक् भिक्खुआ ! हर एव भिक्खु यत् याद ररगा वि अनागत (= भविष्य) में सुन्दर सन्नञ्चारी आवें, आवे हुण (= आगत) सुन्दर सन्नञ्चारी सुत्तमे विहरें, (तत्र तक्) ० । भिक्खुओ ! जय तक् यह मात अ परिहाणीय धर्म (भिक्खुओमे) रहेंगे, (जय तक्) भिक्खु इत्ता सात अ परिहाणीय धर्मां दिताई देंगे, (तत्र तक्) ० ।

(१२) “भिक्खुआ ! और भी सात अ परिहाणीय धर्मोंका कहता हूँ । उसे सुना ० । [१] भिक्खुआ ! जय तक् भिक्खु (सारे दिन चीयर आदिक) काममें

भिक्षव्वे ! भिक्षू न कम्मरामा भविस्सन्ति, न कम्मरता न कम्मारा
 मतमनुयुत्ता; बुद्धियेव भिक्षव्वे ! भिक्षून पाटिकह्वा नो परिहानि ।
 [२] याव किवञ्च भिक्षव्वे ! भिक्षू न भस्सारामा भविस्सन्ति,
 न भस्सरता न भस्सारामतमनुयुत्ता । बुद्धियेव भिक्षव्वे ! भिक्षून
 पाटिकह्वा नो परिहानि । [३] याव किवञ्च भिक्षव्वे ! भिक्षू
 न निहारामा भविस्सन्ति, न निहारता, न निहारामतमनुयुत्ता । बुद्धियेव
 भिक्षव्वे ! भिक्षून पाटिकह्वा नो परिहानि । [४] याव किवञ्च
 भिक्षव्वे ! भिक्षू न सङ्गणिकारामा भविस्सन्ति, न सङ्गणिकरता,
 न सङ्गणिकारामतमनुयुत्ता बुद्धियेव भिक्षव्वे ! भिक्षून पाटिकह्वा नो
 परिहानि । [५] याव किवञ्च भिक्षव्वे ! भिक्षू न पापिच्छा
 भविस्सन्ति, न पापिकान इच्छान वसंगता । बुद्धियेव भिक्षव्वे ! भिक्षून
 पाटिकह्वा नो परिहानि । [६] याव किवञ्च भिक्षव्वे ! भिक्षू न
 पापमिच्छा भविस्सन्ति, न पाप सहाया, न पाप सम्पवङ्कता । बुद्धियेव
 भिक्षव्वे ! भिक्षून पाटिकह्वा नो परिहानि । [७] याव किवञ्च
 भिक्षव्वे ! भिक्षू न श्रोरमत्तकेन विसेसाधिगमेन अन्तरा वोसान
 थापिज्जिस्सन्ति । बुद्धियेव भिक्षव्वे ! भिक्षून पाटिकह्वा नो परिहानि ।

याव किवञ्च भिक्षव्वे ! इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा भिक्षूसु

लगे रहनेवाले (=कर्माराम) = कर्मरत = कमारामता युक्त नहीं होंगे । (तत्र
 तक) ० । [२] जब तक भिक्षु बकवादमे लगे रहनेवाले (=भस्साराम), = भस्सरत
 = भस्सारामता युक्त नहीं होंगे । [३] ० निहाराम = निहारत = निहारामता
 युक्त नहीं होंगे ० । [४] ० सगणिकाराम (= भोजन पसन्द करनेवाले) = सगणिक
 रत = सगणिकारामता युक्त नहीं होंगे ० । [५] ० पापेच्छ (= उदनीयत) = पाप
 इच्छाओंके वशमे नहीं होंगे ० । [६] ० पाप मित्र (= नुरे मित्रोवाले), = पाप सहाय,
 घुराईवी श्रोर रुम्मानवाले न होंगे ० । [७] ० थोलेसे विशेष (= याग-साफल्य) को
 पाकर बीचमे न छोड़ देंगे ० । ० ।

संघ परिष्ठापका, ने मनस्विस्मन्ति, गर्भं वरिस्मन्ति, मानेस्मन्ति,
 पूजेस्मन्ति । तसश्च मातङ्ग्य मन्त्रिस्मन्ति । युद्धियेव भिरग्यो ! भिरमूनं
 पाटिकद्वा नो परिहानि ।” [५] “याव किञ्च भिरग्यो ! भिरमू उष्यन्नाप
 तएहाय पानान्भ्रियथाय न वसं गिष्टिस्मन्ति । युद्धियर भिरसर्वे !
 भिरमून पाटिकद्वा नो परिहानि ।” [६] “याव किञ्च भिरग्यो !
 भिरमू आरभ्रंसेसु सनामनसु सापेसवा भविस्मन्ति । युद्धियेव
 भिरसर्वे ! भिरमून पाटिकद्वा नो परिहानि ।” [७] “याव किञ्च
 भिरसर्वे ! भिरमू पचसन्नेद मति उपह्वेस्मन्ति । किन्ति अनागता च
 पेमला सन्नधचारी आगच्छेस्यु, आगता च पेमला सन्नधचारी
 फायुविहरस्युति । युद्धियेव भिरग्यो ! भिरमूनं पाटिकद्वा नो परिहानि ।”

“याव किञ्च भिरग्यो ! इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा भिरमूसु
 वस्मन्ति । इमेसु च सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मेसु भिरमू सन्दिस्सि
 स्सन्ति । युद्धियेव भिरग्यो ! भिरमूनं पाटिकद्वा नो परिहानि ।”

(१२) अपरेपि वा भिरसर्वे ! सत्त अपरिहानिये धम्मे दस्सेम्मामि ।
 त सुणाय साधुक पनसिकरोय भासिस्सायी, ति । ‘एवं भन्ते,’ ति खो
 त भिबसू भगवतो पचस्सासु । भगवा एतदबोच—[१] याव किञ्च
 चिरप्रमजिन, सन्नध पिता, संपक नायक, स्थयि भियु द्वे, उतरा सत्कार करेगे,
 गुरुकार करग, मानेगे, पूजा, वर (की धात) का सुने याव्य मागेगे ० । [५] जय
 तक पुन पुन उत्पन्न हानवाली कृष्णाव वशमे नही पछेगे ० । [६] जय तक ०
 भियु, आरभ्यय शयनामन (=वनरी कुटियो) की इन्द्रावाग रहेगे ० । [७] जय
 तक भियुओ । हर एक भियु यह याद ररेगे कि अनागत (=भरिय्य) में सुन्दर
 सन्नधचारी आवें, आये हुए (=आगत) सुन्दर सन्नधचारा सुग्यसे विहरें, (तय
 तक) ० । भियुओ । जय तक यह मात अ परिहाण्यीय धर्म (भियुओमें) रहेगे,
 (जय तक) भियु इन सात अ परिहाण्यीय धर्मां दिव्याई देगे, (तय तक) ० ।

(१२) “भियुआ । और भी सात अ परिहाण्यीय धर्मां वा कहता हूँ । उमे
 सुना ० । [१] भियुआ । जय तक भियु (सार दिन चौर आदिक) कामे

- [२] धम्मविचय सम्बोज्झङ्ग भावेस्सन्ति ॥
 [३] वीरिय सम्बोज्झङ्ग भावेस्सन्ति ॥
 [४] पीति सम्बोज्झङ्ग भावेस्सन्ति ॥
 [५] पस्सद्धि सम्बोज्झङ्ग भावेस्सन्ति ॥
 [६] 'समाधि-सम्बोज्झङ्ग भावेस्सन्ति ॥
 [७] 'उपेक्खा-सम्बोज्झङ्ग भावेस्सन्ति ' ॥

बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खून पाटिकह्वा नो परिहानि । याव
 किवञ्च भिक्खवे ! इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा भिक्खूसु ठस्सन्ति ।
 इमेषु च सत्तसु अपरिहानियेषु धम्मेषु भिक्खू सन्दिस्सिस्सन्ति ।
 बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खून पाटिकह्वा, नो परिहानि ।

(१५) अपरे पि वो भिक्खवे ! सत्त अपरिहानिये धम्मे देसेस्सामि ।
 त सुणाय साधुक मनसि करोय भासिस्सामी, ति । 'एव भन्ते', ति
 खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसु ।

भगवा एतदवोच—

- [१] याव किवञ्च भिक्खवे ! भिक्खू अनिच्च सञ्ज्व भावेस्सन्ति
 [२] धनत्त सञ्ज्व भावेस्सन्ति ॥

जत्र तरु भिक्षु स्मृतिसमोध्यग * की भावना करेंगे ० । [२] ० धर्म विचय समोध्यगकी ०।
 [३] ० वीर्य स० । [४] प्रीति-सं० । [५] ० प्रश्रुति-सं० । [६] ० समाधि-सं० ।
 [७] ० उपेक्षा-समोध्यगकी भावना करेंगे ०।

(१५) "भिक्षुओ ! और भी सात अपरिहाणीय धर्मों को कहता हूँ । ।
 [१] भिक्षुओ । जत्र तरु भिक्षु अनित्य सज्ञाकी भावना करेंगे ० [२] ० अनात्ममज्ञा ० ।

- [३] अगुभ-मज्ज्य भारेस्मन्ति ॥
 [४] आरीनर मज्ज्य भारेस्मन्ति ॥
 [५] पतान मज्ज्य भारेस्मन्ति ॥
 [६] विराग मज्ज्य भारेस्मन्ति ॥
 [७] निरोध मज्ज्य भारेस्मन्ति ॥

बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खून पाटिकुह्वा नो परिहानि । याव
 किरञ्च भिक्खवे ! इमे मत्त अपरिहानिया धम्मा भिक्खूसु ठस्सन्ति ।
 इमेसु च सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मंसु भिक्खू मन्दिस्मिस्मन्ति ।
 बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खून पाटिकुह्वा, नो परिहानि ॥

(१६) छ भिक्खवे ! अपरिहानिये धम्म दसस्सामि । त सुणाय
 साधुक मनसिकराय भासिस्सामी, ति ॥ 'एवं भन्ते,' ति खा त भिक्खू
 भगवतो पचस्सोसु । भगवा एतदयोच—

[१] याव किरञ्च भिक्खवे ! भिक्खू मेत्त काय कम्म पच्चु
 पहापेस्सन्ति सन्नस्यारी सु आवीचेवरहा च । बुद्धियेव भिक्खवे !
 भिक्खून पाटिकुह्वा, नो परिहानि ॥

[२] मेत्त वची कम्म पच्चुपहापेस्सन्ति ॥

[३] मत्त मनाकम्म पच्चुपहापेस्सन्ति सन्नस्यारीसु आवीचेव-
 रहोच । बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खून पाटिकुह्वा, नो परिहानि ।

[४] याव किरञ्च भिक्खवे ! भिक्खू ये ते लामा धम्मिका
 धम्म लद्धा अत्तमसो पत्त परियापन्न मत्तपि तथा रूपे हि लाभेहि अप्पटि
 [३] ० भागामे, अगुभसंज्ञा ० । [५] ० आदिना (=दुष्परिणाम)-संज्ञा । [५]
 प्रहाण (=त्याग) संज्ञा ० । [६] ० विराग-संज्ञा ० । [७] निरोधसंज्ञा ० । ० ।

(१६) "भिक्खुआ । और भी हैं अ परिहाणीय धर्मानों कहता हूँ । [१] जब तक
 भिक्षु-सन्नस्यारियों (=गुरुभाइयों) म गुप्त और प्रकट, मैत्रीपूर्ण कायिक कर्म
 रखेंगे ० । [२] ० मैत्रीपूर्ण वाचिक-कर्म रखेंगे ० । [३] ० मैत्रीपूर्ण मानसिक-कर्म
 रखेंगे ० । [५] ० जब तक भिक्षु धार्मिक, धर्म से प्राप्त जा लाभ हैं—अन्तम पात्रमें

विभक्त भोगी भविस्सन्ति सीलवन्ते हि सव्रह्मचारी हि साधारण भोगी ।
बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खून पाटिकह्वा नो परिहानि ॥

[५] याव किञ्च भिक्खवे ! भिक्खून यानि तानि सीलानि
अखण्डानि अछिदानि असवलानि अकम्मासानि भुजिस्सानि विञ्चूप
सट्ठानि अपरामट्ठानि समाधि सवत्तनिकानि । तथा रूपे सुसीलेसु
सील सामञ्जगता विहरिस्सन्ति सव्रह्मचारी हि आवीचेवरहोच ।
बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खून पाटिकह्वा, नो परिहानि ।

[६] याव किञ्च भिक्खवे ! भिक्खून या य दिट्ठि अरिया
निययानिका निययाति तक्क रस्स सम्मा दुक्खक्खयाय तथा रूपाय
दिट्ठिया दिट्ठि सामञ्जगता विहरिस्सन्ति सव्रह्मचारी हि आवीचेवरहोच ।
बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खून पाटिकह्वा, नो परिहानि ।

(१७) याव किञ्च भिक्खवे ! इमे छ अपरिहानिया धम्मा भिक्खूसु
ठस्सन्ति । इमेसु वसु अपरिहानियेसु धम्मेसु भिक्खू सन्दिस्सिस्सन्ति ।
बुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खून पाटिकह्वा, नो परिहानी, ति ।

(१८) तत्र सुद भगवा राजगहे विहरन्तो गिञ्जकूटे पव्वते एतदेव
बहुलं भिक्खून धम्मि-कय करोति । 'इति सील, इति समाधि, इति

चुपल्लने मात्र भी—वैसे लामोंको (भी) शीलवान् सव्रह्मचारी भिक्षुओंमें बाँटकर भोग
करनेवाले होंगे ० [५] ० जब तक भिक्षु, जो वह अरड (= निर्दोष) अ द्विट, अ कल्प
= भुजिस्स (= सेवनीय), विद्वानोंसे प्रशसित, अ निन्दित समाधिकी ओर (ले)
जानेवाले शील हैं, वैसे शीलोंसे शील-आमण्य युक्त हो मज्झचारियोंके साथ गुप्त
भी प्रकट भी विहरेंगे ० । [६] जो वह आर्य (= उत्तम), नैर्घणिक (= पार
करनेवाली), वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दु र छयनी ओर ले जानेवाली दृष्टि
है, वैसी दृष्टिसे दृष्टि-आमण्य युक्त हो, सव्रह्मचारियोंके साथ गुप्त भी प्रकट भी विहरेंगे ।

(१७) भिक्षुओं ! जब तक यह है अपरिहाणीय धर्म ० ।

(१८) वहाँ राजगृहमें गृध्रकूट पर्वतपर विहार करते हुए भगवान् बहुत
करके भिक्षुओंको यही सुने थे—ऐसा शील है, ऐसी समाधि है, ऐसी प्रकट

पञ्चा । सील परिभावितो समाधि महष्फलो होति महानिसमो । समाधि परिभाविता पञ्चा महष्फला होति महानिसमा । पञ्चा परिभावित चित्त सम्मदेव आमवेहि विमुचति । संय्ययिद,—कामासवा, भवासवा, अविज्जनामवा, ति ।'

(१९) अथ खो भगवा राजगहे यथाभिरन्त विहरित्वा आयस्मन्त आनन्द आपन्तेसि 'आयामानन्द ! येन अम्बलट्टिका तेनुपसङ्गमिस्सामा, ति ।'

'एव भन्त', ति रओ आयस्मा आनन्दो भगवतो पचस्सोसि ।

(२०) अथ खो भगवा महता भिन्नु सवेन सद्धि येन अम्बलट्टिका तदवसरि । तत्र सुद भगवा अम्बलट्टिकाय विहरति राजागारके । तत्र पि सुद भगवा अम्बलट्टिकाय विहरन्तो राजागारके, एतदेव घहुल है । शीलसे परिभावित समाधि महा फलवाली = महा आनृशसवाली होती है । समाधिसे परिभावित प्रज्ञा मत्फलवाली = महा आनृशसवाली जाती है । प्रज्ञासे परिभावित चित्त आसवा*,—आमासव, भवासव, दृष्टि आसव—से अच्छी तरह मुक्त होता है ।

बुद्धकी अन्तिम यात्रा

अम्बलट्टिका—

(१९) तत्र भगवान्ते गजगृहमें इच्छानुमार विहारकर आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

"चतो आनन्द ! जहाँ अम्बलट्टिका है, वहाँ चलें ।" "अच्छा, भन्ते ।"

(२०) तत्र भगवान् महान् भिन्नु-संघके साथ जहाँ अम्बलट्टिका थी, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् अम्बलट्टिकामें राजागारकमें विहार करते थे । वहाँ ० राजागारकमें भी भगवान् भिन्नुओंको बहुधा यही धर्म कथा कहते थे—० ।

* आसव (= चित्त-मल)—भोग (= काम) संबंधी, आवागमन (= भव) संबंधी, धारणा (= दृष्टि)-संबंधी ।

† सम्भवत वर्तमान सिलाल ।

भिक्षुन धम्मि कय करोति । 'इति सील, इति समाधि, इति पञ्चा ।
सील परिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिससो । समाधि
परिभाविता पञ्चा महप्फला होति महानिससा । पञ्चा परिभावित
चित्त सम्मदेव आसवेहि विमुचति । सेट्ठयिदं—कामासवा, भवासवा,
अविज्जासवा, ति ।'

(२१) अथ खो भगवा अम्बलट्टिकाय यथाभिरन्तं विहरित्वा
आयस्मन्तं आनन्द आमन्तेसि 'आयामानन्द ! येन नालन्दा,
तेनुपसङ्कमिस्सामा, ति ।'

'एव भन्ते', ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पचस्सोसि ।

(२२) अथ खो भगवा महता भिक्षु सघेन सद्धिं येन नालन्दा,
तदवसरि । तत्र सुद भगवा नालन्दाय विहरति पावारिकम्भवने ।
अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो येन भगवा, तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा
भगवन्त अभिवादेत्वा एकमन्त निसीदि । एकमन्त निसिच्चो खो

(२१) भगवान्ने अम्बलट्टिकामे यथेच्छ विहार कर आयुष्मान् आनन्दको
आमन्त्रित किया—

“चलो आनन्द ! जहाँ नालन्दा है, वहाँ चलो ।” “अच्छा, भन्ते ।”

बुद्धके प्रति सारिपुत्रका उद्गार

नालन्दा—

(२२) तत्र भगवान् वहाँसे महाभिक्षु-सघके साथ जहाँ नालन्दा थी, वहाँ
पहुँचे । वहाँ भगवान् नालन्दा*में प्राचारिक आश्रममें विहार करते थे ।

तत्र आयुष्मान् सारिपुत्रा जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्को
अभिवादनकर एक आर बैठ गये । एक आर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने
भगवान्से कहा—

* वर्तमान बलगाँव, जिला पटना ।

† पृ० १२४ टि० १ से

सारिपुत्रका इस वक्त होना सन्दिग्ध है ।

आयस्मा मारिपुत्रो भगवन्त पण्डवोच—‘एव पसधो अह भन्ते । भगवति । न चाहु न च भविस्मति न चैतरदि विजगति अज्जो सपणी वा ब्राह्मणा वा भगवता भिग्यो भिज्जतरं पदिदं सम्बोधियन्ति ।’

(२३) उल्लारा खो ते अय मारिपुत्त ! अमभियाथा भासिता । एव सो गहिता मीदनात्ता नटिता । ‘एवं पमघ्ना अह भन्ते । भगवति । न चाहु, न च भविस्मति, न चैतरदि विजगति अज्जो सपणा वा ब्राह्मणो वा भगवता भिग्या भिज्जतरं पदिदं सम्बोधियन्ति ।’

(२४) ‘किंनु सारिपुत्त ! ये ते अहेसु अतीत पट्टान अरहन्तो सम्मा सम्बुद्धा । सन्ने ते भगवन्तो चेतमा चेतोपरिष्व विदिता । एव सीला ते भगवन्ता अहेसु इति पि । एवं घम्मा, एवं पञ्जा, एवं विहारी, एवं विमुच्चा ते भगवन्तो अहेसु इति पी, ति ?’ ॥

नो हेत भन्ते ।

(२५) किं पन सारिपुत्त ! ये ते भविस्सन्ति अनागत पट्टान अरहन्तो सम्मामम्बुद्धा । सन्ने ते भगवन्तो चेतमा चेतो परिष्व विदिता । एव सीला ते भगवन्तो भविस्सन्ति इति पि । एव घम्मा, एवं पञ्जा, एव विहारी, एव विमुच्चा ते भगवन्तो भविस्सन्ति इति पी, ति ?’ ॥

“भत ! मेरा ऐसा विश्वास है—‘सबोधि (= परमज्ञान) में भगवान्में पढ़कर (= भूषण) पाई दूसरा अमण ब्राह्मण न हुआ, न हागा, न इस समय है ।’”

(२२) “सारिपुत्र ! तूने यह बहुत बडार (= बड़ी) = आर्षमी वाणी बही । बिल्कुल सिहनाद किया—‘मेरा ऐसा ० ।’

(२४) सारिपुत्र ! जो वह अतीतकालमें अहत् सम्यक्-संबुद्ध हुए, क्या (तूने) उन सब भगवानाका (अपन) चित्तसे जान लिया, कि वह भगवान् जैसे शीलवाले, ऐसी प्रज्ञावाले, ऐस विहारवाले, ऐसी त्रिमुक्तिवाले थे ?”

“नहीं, भन्ते ।”

(२५) “सारिपुत्र ! जो वह भविष्यकालमें अहेसु-सम्यक्-संबुद्ध होंगे, क्या उन सब भगवानोंका चित्तसे जान लिया ० ?”

नो हेत भन्ते !

(२६) किं पन सारिपुत्त ! अह एतरहि अरह सम्मासम्बुद्धो चेतसा चेतो परिच्च विदितो । एव सीलो भगवा इति पि । एव घम्मो, एव पञ्चो, एव विहारी, एव विमुत्तो भगवा इति पी, ति ? ।

नो हेत भन्ते !

(२७) एतरहि ते सारिपुत्त ! अतीतानागत पच्चुप्पन्नेसु अरहन्तेसु सम्मासम्बुद्धेसु चेतसा चेतो परियाय आणं नत्थि, अथ किञ्च-रहिते अय सारिपुत्त ! उलारा असम्भि वाचा भासिता । एक सो गहितो सीह-नादो नदितो—‘एव पसन्नो अह भन्ते ! भगवति । न चाहु, न च भवि-स्सति, न चेतरहि विज्जति अञ्चो समणो वा ब्राह्मणो वा भगवता भिच्चो भिच्चत्तरो यदिद सम्बोवियन्ति’ ॥

(२८) न खो मे भन्ते ! अतीतानागत पच्चुप्पन्नेसु अरहन्तेसु सम्मा-सम्बुद्धेसु चेतो परियाय आण अत्थि । अपिच खो मे भन्ते ! घम्मन्वयो विदितो, सेय्यथापि भन्ते !—रञ्चो पच्चन्तिम नगर दल्ह द्वार, दल्ह पाकार तोरण एक द्वार । तत्रस्स द्वावारिको पण्डितो वियत्तो मेधावी

“नहीं, भन्ते !”

(२६) “सारिपुत्र ! इस समय मैं अर्हत्-सम्यक्-समुद्ध हूँ, क्या चित्तसे जान लिया, (कि मैं) ऐसी प्रज्ञावाला ० हूँ ?”

“नहीं, भन्ते !”

(२७) “(जत्र) सारिपुत्र ! तेरा अतीत, अनागत (=भविष्य), प्रत्युत्पन्न (=वर्तमान) अर्हत्-सम्यक्-संबुद्धोंके विषयमें चेत परिज्ञान (=पर-चित्तज्ञान) नहीं है, तो सारिपुत्र ! तूने क्यों यह बहुत उदार = आर्षभी वाणी कही ० ?”

(२८) “भन्ते ! अतीत अनागत प्रत्युत्पन्न अर्हत्-सम्यक्-संबुद्धोंमें मुझे चेत-परिज्ञान नहीं है, किन्तु (सयकी) धर्म अन्वय (=धर्म-समानता) विदित है । जैसे कि भन्ते ! राजा का सीमान्त-नगर दृढ नींबूवाला, दृढ प्राकारवाला, एक द्वारवाला हो । वहाँ अज्ञातो (=अपरिचितो) को निवारण करनेवाला, ज्ञातो (=परिचितो)

अन्नातान निवाग्वा धानान पवेमेता । मो तस्म नगरस्त समन्ता
 अनुत्तरियात् पय अनुत्तरमानो न पम्नेयत् पाकार सन्धि वा पाकार
 विवर या अन्तममो विलार निरस्वमन-मत्तपि । तस्स एव-मम्म वे सा
 नेधि आलारिका पाया इम नगर पविमन्ति वा निरस्वमन्ति वा । मत्त
 ते इमिनाव द्वाग्म पविमन्ति वा निरस्वमन्ति वा, ति । एवमेव खो मे भन्त !
 पम्पन्वयो विदितो ॥ ये त भन्त ! अहेसु अतीतमद्धान अरहन्तो सम्मा
 सम्बुद्धा । सत्ते त भगवन्ता पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्खिलेमे
 पञ्जाय दुब्बलि करणे, चत्तुसु सतिपद्दानेसु सुपट्ठित चित्ता, सत्त बोज्जङ्गे
 ययाभूत् भावत्ता अनुत्तर सम्मासम्भोधि अभिसम्बुद्धिसु । ये पि त
 भन्ते ! मपिस्सन्ति अनागतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा । सन्ते ते
 भगवन्तो पञ्च नीवरणे पहाय चेतसा उपक्खिलेमे पञ्जाय दुब्बलि करणे,
 चत्तुसु सतिपद्दानेसु सुपट्ठित चित्ता, सत्त बोज्जङ्गे ययाभूत् भावत्ता,
 अनुत्तर सम्मासम्भोधि अभिसम्बुद्धिससन्ति । भगवा पि भन्त ! एतदि
 अहं सम्मासम्बुद्धो पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्खिलेसे पञ्जाय
 दुब्बलि करणे, चत्तुसु सतिपद्दानेसु सुपट्ठित चित्ता, सत्त बोज्जङ्गे यया
 भूत् भावत्ता अनुत्तर सम्मासम्भोधि अभिसम्बुद्धोति' ॥

अ प्रवेत्त ज्ञानमज्ञा पट्टि=त्यक्त=नेपावी द्वारपाल हो । वहाँ नगरकी चार
 द्वार, अनुत्तराय (=द्वारा) मार्गपर घूमत हुए (मनुष्य), प्राकारमें अन्तर्गत
 निरस्वम नगरी भी मपि (=विरर) न पाये । उसको ऐसा हो—'जो कोई बड़े बड़े
 ज्ञान रखे नगरीमें प्रवेश करते हैं, ममी इसी द्वारसे ० । ऐसे ही भन्ते । मो पर
 अन्तर्गत ज्ञान ज्ञान—'मो वह अतीतज्ञानमें अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध हुए, वह समा भान
 वान भी चित्तके उपस्तेग (=मन) प्रकाशे दुर्बल करनेवाले, पाँचों नीवरणों
 को छोड़, चांगे मूढि-प्रधानान चित्तका सु प्रतिष्ठितकर, सात बोध्यगोत्री पथार्थसे
 भावना कर, सर्वश्रेष्ठ (=अनुत्तर) सम्यक्-संबोधि (=परमज्ञान) का साक्षात्कार
 करिये थे । और मन्त ! अनागतमें भी जो अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध होंगे, वह सभी भग
 वान ० । भन्ते ! इस समय भाषान अर्हत्-सम्यक्-संबुद्धने भी चित्तके उपस्तेग ० ।'

(२९) तत्र पि सुद भगवा नालन्दायं विहरन्तो पावारिकम्बवने देव बहुल भिक्खून धम्मि-कथ करोति । 'इति सील, इति समाधि, इति आ । सील परिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिससो । समाधि भाविता पञ्चा महप्फला होति महानिससा । पञ्चा परिभावितं त सम्मदेव आसवेदि विमुच्चति । सेट्यधिद—कामासवा, भवासवा, वेज्जासवा, ति ।'

(३०) अथ खो भगवा नालन्दाय यथाधिरन्त विहरित्वा आयस्मन्त आनन्द आमन्तेसि—'आयामानन्द ! येन पाटलिगामो तेनुपसङ्ग-स्सामा, ति ।'

'एव भन्ते', ति खो आयस्सा आनन्दो भगवतो पचस्सोसि ।

(३१) अथ खो भगवा महता भिक्खु सघेन सद्धिं येन पाटलिगामो इवसरि ।

(२९) वहाँ नालन्दा में प्रावारिक प्राङ्गवन में विहार करते, भगवान् भिक्षुओं के साथ यही कहते थे ० ।

पाटलि ग्राम—

(३०) तत्र भगवान् ने नालन्दा में इच्छानुसार विहार कर, आयुष्मान् आनन्द को आमंत्रित किया—

"चलो, आनन्द ! जहाँ पाटलि ग्राम है, वहाँ चलो ।"

"अच्छा, भन्ते !"

(३१) तत्र भगवान् महान् भिक्षुसङ्घ के साथ, जहाँ पा ट लि ग्राम था, वहाँ गये । पाटलिग्राम के उपासकों ने सुना कि भगवान् पाटलिग्राम आये हैं । तत्र उपासक जहाँ भगवान् थे वहाँ गये । जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे उपासकों ने भगवान् से यह कहा—

अज्ञातानं निशरता यातानं पत्रेसेता । मो तस्म नगरस्म सपन्ता
 अलुपरियाय पय अतुरममानो न पस्नेय्य पाकार सन्धि वा पाकार
 विवर वा अन्तममा विलार निवस्वमन-मर्चापि । तस्स एव-मस्स ये खो
 केचि थोलागिका पाणा इम नगर पविसन्धि वा निरस्वमन्ति वा । मन्वे
 ते इमिनाय द्वारन पविसन्धि वा निरस्वमन्ति वा, ति । एवमेव खो ये भन्ते ।
 धम्मन्वयो विदितो ॥ ये त भन्ते ! अहेसु अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मा
 सम्बुद्धा । सन्व त भगवन्ता पञ्च नीवरणे पहाय चेतसा उपक्लिसे
 पञ्चाय दुन्वलि करणे, चतसु सतिपट्टानेसु सुपट्ठित चित्ता, सत्त बोज्झङ्गे
 यथाभूत भावेत्वा अनुत्तर सम्मासम्बोधि अभिसम्बुज्झिस्सु । ये पि ते
 भन्ते ! भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अरहन्ता सम्मासम्बुद्धा । सन्वे ते
 भगवन्तो पञ्च नीवरणे पहाय चतसा उपक्लिसे पञ्चाय दुन्वलि करणे,
 चतसु सतिपट्टानेसु सुपट्ठित चित्ता, सत्त बोज्झङ्गे यथाभूत भावेत्वा,
 अनुत्तर सम्मासम्बोधि अभिसम्बुज्झिस्सन्ति । भगवा पि भन्ते ! एतरहि
 अरह सम्मासम्बुद्धो पञ्च नीवरणे पहाय चेतसा उपक्लिसे पञ्चाय
 दुन्वलि करणे, चतसु सतिपट्टानेसु सुपट्ठित चित्ता, सत्त बोज्झङ्गे यथा
 भूत भावेत्वा अनुत्तर सम्मासम्बोधि अभिसम्बुद्धोति' ॥

को प्रवेश करनेवाला पंडित = व्यक्त = मोधावा द्वारपाल हा । वहाँ नगरकी चारों
 ओर, अनुपयाय (=क्रमश) मार्गपर घूमन हुए (मनुष्य), प्राकारमें अन्तव जिल्लीके
 निकलते भरकी भी संधि (=त्रिज) न पाय । उसका ऐसा हो—'जो कोई बड़े बड़े
 प्राणी इस नगरमें प्रवेश करत हैं, सभी इसी द्वारसे ० । ऐसे ही भन्ते । मैंने धर्म
 अन्यय जान लिया—'जो वह अतीतकाल अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध हुए, वह सभी भग
 वान् भी चित्तके उपप्लश (=मल) प्रताका दुर्घत करनेवाल, पाँचों नी व र खों
 को छोड़, चारों स्मृति प्रस्थानाम चित्तका सु प्रतिष्ठितर, सात बोध्यगोंकी यथार्थसे
 भावना कर, सर्वश्रेष्ठ (=अनुत्तर) सम्यक्-सवाधि (=परमज्ञान) वा मात्तात्कार
 किये थे । और भन्ते । अनागतम भी जा अर्हत्-सम्यक्-संबुद्ध होंगे, वह सभी भग
 वान ० । भन्ते । इस समय भगवान अर्हत्-सम्यक्-संबुद्धने भी चित्तके उपप्लेश ० ।'

(२९) तत्र पि सुद भगवा नालन्दाय विहरन्तो पावारिकम्बवने एतदेव बहुल भिक्षून धम्मि-कथ करोति । 'इति सील, इति समाधि, इति पञ्चा । सील परिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिससो । समाधि परिभाविता पञ्चा महप्फला होति महानिससा । पञ्चा परिभावित चित्त सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति । सेय्ययिद—कामासवा, भवासवा, अविज्जासवा, ति ।'

(३०) अथ खो भगवा नालन्दाय यथाभिरन्त विहरित्वा आयस्मन्त आनन्द आयन्तेसि—'आयामानन्द ! येन पाटलिगामो तेनुपसङ्कमिस्सामा, ति ।'

'एव भन्ते', ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि ।

(३१) अथ खो भगवा महता भिक्षु सघेन सद्धि येन पाटलिगामो तदवसरि ।

(२९) वहाँ नालन्दा में प्राणारिक आम्रवन में विहार करते, भगवान् भिक्षुओं को बहुधा यही कहते थे ० ।

पाटलि ग्राम—

(३०) तत्र भगवान्ने नालन्दा में इन्द्रानुसार विहारकर, आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

"चलो, आनन्द ! जहाँ पाटलि ग्राम है, वहाँ चतों ।"

"अच्छा, भन्ते ।"

(३१) तत्र भगवान् महान् भिक्षुसघके साथ, जहाँ पा ट लि प्रा म था, वहाँ गये । पाटलिग्रामके उपासकोंने सुना कि भगवान् पाटलिग्राम आये हैं । तत्र उपासक जहाँ भगवान् थे वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे उपासकोंने भगवान्से यह कहा—

परिस उपसङ्गमति यदि खत्तिय-परिस, यदि ब्राह्मण परिस, यदि गृहपति परिस, यदि समण-परिस अविसारदो उपसङ्गमति, मङ्कुभूतो । अय ततियो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया ।

[४] पुन च पर गृहपतयो ! दुस्सीलो सील विप्पन्नो समुद्धो काल करोति । अय चतुत्थो आदीनवो दुस्सीलस्स सील विपत्तिया ।

[५] पुन च पर गृहपतयो ! दुस्सीलो सील विप्पन्नो कायस्स भेदा पर मरणा अपाय दुग्गतिं विनिपात निरय उपपज्जति । अय पञ्चमो आदीनवो दुस्सीलस्स सील विपत्तिया ॥ इमे खो गृहपतयो ! पञ्च आदीनवा दुस्सीलस्स सील विपत्तिया ॥

(३५) पञ्चमे गृहपतयो ! आनिसंसा सीलवतो सीलसम्पदाय । कतमे पञ्च ?

[१] इध गृहपतयो ! सीलवा सील सम्पन्नो अप्पमादाधिकरण महन्त भोगवखन्द अधिगच्छति । अय षठ्ठो आनिसंसा सीलवतो सील सम्पदाय ॥

[२] पुन च पर गृहपतयो ! सीलवतो सील सम्पन्नस्स कल्याणो कित्ति सद्दो अञ्जुगच्छति । अय दुत्तियो आनिसंसा सीलवतो सील सम्पदाय ॥

क्षत्रिय ब्राह्मण, गृहपति या श्रमण जिस किसी सभामें जाता है प्रतिभा रहित, मूर्ख होकर ही जाता है ० । [४] ० मूढ रह मृत्युको प्राप्त होता है ० । [५] और फिर गृहपतियों । दुराचारी आचारश्रेष्ठ काया छाळ मरनेसे बाद अपाय=दुर्गति=पतन=नरकमें उत्पन्न होता है । दुराचारीके दुराचारके कारण यह पाँचनों दुष्परिणाम है । ० ।

(३५) “गृहपतियो । सदाचारीके लिये सदाचारके कारण पाँच सुपरिणाम हैं । कौनसे पाँच ?—[१] गृहपतियो । सदाचारी अप्रमाद (= गफलत न करना) होकर बड़ी भोगराशिको (इसी जन्ममें) प्राप्त करता है । सदाचारीको सदाचारके कारण यह पहला सुपरिणाम है । [२] ० सदाचारीका भगल यश फैलता है ० ।

[३] पुन च पर गृहपतयो ! सीलवा सील सम्पन्ना य यदेव परिसं उपसङ्गमति यदि खत्तिय-परिसं, यदि ब्राह्मण परिसं, यदि गृहपति परिसं, यदि समण परिसं विसारदो उपसङ्गमनि अमङ्कुभूतो । अयं तत्तियो आनिसंसेो सीलवतो सील सम्पदाय ॥

[४] पुन च पर गृहपतयो ! सीलवा सीलसम्पन्ना अममुत्तेहो काल करोति । अयं चतुत्थो आनिसंसेो सीलवतो सील सम्पदाय ॥

[५] पुन च पर गृहपतयो ! सीलवा सील सम्पन्ना कायस्स-भेदा पर मरणा सुगतिं सग्गलोक उपपज्जति । अयं पञ्चमो आनिसंसेो सीलवतो सील सम्पदाय ॥

इमे खो गृहपतयो ! पञ्च आनिससा सीलवतो सील सम्पदाया, ति ।

(३६) अथ खो भगवा पाटलिगामिके उपासके बहुदेव रत्तिं धम्मिया कयाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सपहसेत्वा उच्योजेसि । अभिक्कन्ता खो गृहपतयो ! रत्तियस्स दानि तुम्हे काल मञ्जया, ति । 'एव भन्ते', ति खो पाटलिगामिया उपासका भगवतो पटिस्सुत्वा उट्ठायासना भगवन्त अभिवादेत्वा पदक्खिण कत्वा पक्कमिस्सु ।

[३] ० जिस किसी सभामे जाता है मूक न हो विशारद बनकर जाता है ० ।

[४] ० मूढ न हो मृत्युको प्राप्त होना है ० । [५] और फिर गृहपतियों । सदाचारी सदाचारके कारण काया छोड़ मरनेके बाद सुगति=स्वर्गलोकको प्राप्त होता है । सदाचारीको सदाचारके कारण यह पाँचों सुपरिणाम है ।

गृहपतियो ! सदाचारीके लिये सदाचारके कारण यह पाँच सुपरिणाम हैं ।"

(३६) तत्र भगवान्ने बहुत रात तक उपामर्शका धार्मिक कथासे संदर्शित ममुत्तेजितकर उद्योजित किया—'गृहपतियो ! रात छोड़ हो गई, जिसका तुम समय समझते हो (वैसा करो) ।"

अथ खो भगवा अचिर पारुन्तेमु पाटलिगामिन्नेगु उपासन्नेगु मुञ्जा
गार पाविसि ॥

(३७) तेन खो पन ममयेन मुनिध वस्सकारा मगघ महामत्ता
पाटलिगामे नगर मापेन्ति वज्जीन पट्टिवाहाय । तेन ममयेन मम्पहुला
देवता महस्सस्सेव पाटलिगामे वत्थूनि परिग्गएहन्ति । यस्मिं पदेमे महे-
सवत्ता दवता वत्थूनि परिग्गएहन्ति । महेसवत्तानं तत्थ रञ्ज्य राज महा
मत्तान चित्तानि नमन्ति निवेसानानि मापेतु । यस्मिं पदेसे मग्गिभूमा
देवता वत्थूनि परिग्गएहन्ति, मग्गिभूपान तत्थ रञ्ज्य राज-महामत्तान

“अच्छा भन्ते ।” पाटलिग्राम वामो * उपामक आसन्ते उठ्ठर
भगवान्नां अभिवादनकर, प्रदग्गिणाकर, चन गये । तथ पाटलिग्रामिश्च उपासन्ते
पण जानके थोळी ही देव वाद भगवान् शूय आगारमे उले गये ।

(२) पाटलिपुत्रका निर्माण

(३७) उस समय सुनीध (=सुनीध) और चर्चकार मगधके महामात्य
पाटलिग्रामम घज्जियौंको रोऊनेके जिये नगर बसा रह थे । उस समय अनेक हजार
देवता पाटलिग्राम में वास ग्रहण कर रहे थे । जिस स्थानमें महाप्रभावशाली
(=महेश्वर) देवताओंन वास ग्रहण किया, उस स्थानमें महाप्रभावशाली राजाआ

* ‘ भगवान् कथ पाटलिग्राम गये । आरस्तीमें धर्मसेनापति (मारिपुत्र) का
चेत्य बनवा, वहाँसे निकलकर राजगृहमें वास करते, वहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायनका
चेत्य बनवाकर, वहाँसे निकल अम्पत्तट्टियामें वासकर, अ स्वरित चारिकासे देशमें
विचरते, वहाँ वहाँ एक एक रात वास करते, सोकानुग्रह करते, क्रमण पाटलिग्राम
पहुँचे । पाटलिग्राममें अजातशत्रु और लिच्छवि राजाओंके आदमी समय समयपर आकर
घरके मालिकोको घर से निकालकर (एक) मास भी आये मास भी बस रहते थे ।
इससे पाटलिग्राम वासियोने नित्य पीड़ित हो— उनके आनेपर यह (हमारा) वासस्थान
होगा—(सोच) नगरके बीचमें महाशाला बावाई । उसीका नाम था आरसथा
गार । वह उनी दिन समाप्त हुआ था ।”—अट्टकथा ।

चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतु । यस्मिं पदेमे नीचा देवता वत्थूनि परिग्गएहन्ति, नीचान तत्थ रञ्ज राज-महामत्तान चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतु । अइस खो भगवा दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिकन्त मानुसकेन ता देवतायो सहस्सस्सेव पाटलिगामे वत्थूनि परिग्गएहन्तियो ॥

(३८) अथ खो भगवा रत्तिया पच्चुस समय पच्चुहाय आयस्मन्त आनन्द आमन्तेसि—“कोनुखो आनन्द पाटलिगामे नगरं मापेतीति ?”

“सुनिध वस्सकारा भन्ते ! मगध महामत्ता पाटलिगामे नगर मापेन्ति वज्जीन पटिवाहाया,ति ॥”

(३९) सेय्यथापि आनन्द ! देवे हि तावत्तिसे हि सद्धि मन्तेत्वा एवमेव खो आनन्द ! सुनिध वस्सकारा मगध महामत्ता पाटलिगामे नगर मापेन्ति वज्जीन पटिवाहाय । इधाह आनन्द ! अइसं दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिकन्त मानुसकेन सम्पहुला देवतायो सहस्सेव और राजमहामन्त्रियोंके चित्तमे घर बनानेको होता है । जिस स्थानमे मध्यम श्रेणीके देवताओंने वास ग्रहण किया, उस स्थानमे मध्यम श्रेणीके राजाओं और राजमहामन्त्रियोंके चित्तमें घर बनानेको होता है । जिस स्थानमें नीच देवताओंने वास ग्रहण किया, उस स्थानमे नीच राजाओं और राजमहामन्त्रियोंके चित्तमें घर बनानेको होता है ।

(३८) भगवान्ने रातके प्रत्युप समय (= भिनसार) को उठकर आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

“आनन्द ! पाटलिग्राममे कौन नगर बना रहा है ?”

“भन्ते ! सुनिध और वर्यकार मगध-महामात्य, वज्जियोंके रोकनेके लिए नगर बसा रहे हैं ।”

(३९) “आनन्द ! जैसे त्रयस्त्रिंश देवताओंके साथ सलाह करके मगधके महामात्य सुनिध, वर्यकार, वज्जियोंके रोकनेके लिये नगर बना रहे हैं । आनन्द ! मैंने अधमानुप दिव्य नेत्रसे देखा—अनेक सहस्र देवता यहाँ पाटलिग्राममें वास्तु (= घर,

अथ ग्वा भगवा अचिर पान्तगु पाटलिगामिकेणु उपासकेणु सुञ्जा
गार पाविसि ॥

(३७) तेन सो पन समयेन सुनिध वस्मकाग मगय महापचा
पाटलिगामे नगर मापेन्ति वज्जीनें पट्टिवाहाय । तेन मययेन सम्पहुला
देवता सहस्रसम्भेव पाटलिगामे वत्युनि परिगएहन्ति । पस्सिप पदंसे महे-
सवत्वा दवता वत्युनि परिगएहन्ति । महेसवरानं तत्य रञ्ज्ने राज महा
मत्तानं चित्तानि नपन्ति निरेसनानि मापेतु । यस्मि पदंसे मशिकमा
देवता वत्युनि परिगएहन्ति, मशिकमान तत्य रञ्ज्ने राज महामत्तान

“अद्वा भन्त । ’ पाटलिग्राम-धामी • उपासक आतासे ष्ठहर
भगवान्सा अभिप्रादपर, प्ररलिष्ठापर, चन गये । तय पाटलिग्रामिक उपासका
पग जाऊ थाळी ही दर घाद भगवान् शूय आगारम पगे गये ।

(२) पाटलिपुत्रका निर्माण

(३७) उम समय सुनीध (=सुनोध) और घषकार मगधके महाभाय
पाटलिग्रामम घजिजयोको रोऊनक निये गगर मत्ता रहे थ । उम समय अनेक हजार
देवता पाटलिग्राम में पास प्राण पर रहे थ । निम स्थानमें महाप्रभायशाली
(=महेसव्य) देवताओं याम मशूय किया, उम स्थानमें महाप्रभायशाली राजाओं

* ‘ भगवा कय पाटलिग्राम गये ? आत्मनामें घमसेतापति (भारिपुत्र) का
चैत्य बनवा, वहासे निकलकर राजगृहमे वात करते, वहा आयुष्माग् महामौद्गत्यायनका
चैत्य बनवाकर, वहासे निकल अम्नराट्टियामें वातकर अ तरित चारिकासे देशमें
विचरते, वहा वहा एक एक रात वात करते, साकारुमद करते, भ्रमग पाटलिग्राम
पहुँचे । पाटलिग्राममें अजातशत्रु और लिच्छवि राजाओंके बादमी समय समयपर आकर
परके मालिकाको पर से निकालकर (एक) मास भी आये मास भी बस रहते थे ।
इससे पाटलिग्राम वासियोने तिय पीळित हो-उनवे आनेपर यद (हमारा) वातस्थान
होगा—(सोच) नगरक बीचम महाशाला बनवाई । उसीका नाम था आनसथा
गार । वह उसी दिन समाप्त हुआ था ।” —अट्टकया ।

चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतु । यस्मिं पदेसे नीचा देवता वस्तूनि परिगगएहन्ति, नीचान तस्य रञ्ज राज-महामत्तान चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतु । अहस खो भगवा दिव्वेन चक्खुना विसुद्धेन अति-क्कन्त मानुसकेन ता देवतायो सहस्सस्सेव पाटलिगामे वस्तूनि परिगग-एहन्तियो ॥

(३८) अथ खो भगवा रत्तिया पच्चुस समय पच्चुट्टाय आयस्मन्त आनन्द आमन्तेसि—“कानुखो आनन्द पाटलिगामे नगरं मापेतीति ?”

“सुनिध वस्सकारा भन्ते ! मगध महामत्ता पाटलिगामे नगर मापेन्ति वज्जनीन पटिवाहाया,ति ॥”

(३९) सेय्ययापि आनन्द ! देवे हि तावतिसे हि सद्धि मन्तेत्वा एवमेव खो आनन्द ! सुनिध वस्सकारा मगध महामत्ता पाटलिगामे नगर मापेन्ति वज्जनीन पटिवाहाय । इधाह आनन्द ! अहस दिव्वेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्त मानुसकेन सम्पहुत्ता देवतायो सहस्सेव

और राजमहामंत्रियोंके चित्तमें घर बनानेको होता है । जिस स्थानमें मध्यम श्रेणीके देवताओंने वास ग्रहण किया, उस स्थानमें मध्यम श्रेणीके राजाओं और राजमहामंत्रियोंके चित्तमें घर बनानेको होता है । जिस स्थानमें नीच देवताओंने वास ग्रहण किया, उस स्थानमें नीच राजाओं और राजमहामंत्रियोंके चित्तमें घर बनानेको होता है ।

(३८) भगवान्ने रातके प्रत्युष समय (=भिनसार) को उठकर आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

“आनन्द ! पाटलिग्राममें कौन नगर बना रहा है ?”

“भन्ते । सुनीध और वर्षकार मगध महामात्य, वज्जियोंको रोकनेके लिए नगर बसा रहे हैं ।”

(३९) “आनन्द ! जैसे त्रायन्त्रिंश देवताओंके साथ सलाह करके मगधके महामात्य सुनीध, वर्षकार, वज्जियोंके रोकनेके लिये नगर बना रहे हैं । आनन्द ! मैंने अमानुष दिव्य नेत्रसे देखा देवता यहाँ पाटलिग्राममें वास्तु (=घर,

पाटलिगामे वत्थूनि परिग्गएहन्तियो । यस्मिं आनन्द ! पदेसे महेसवखा
 देवता वत्थूनि परिग्गएहन्ति, महेसवखान तत्थ रञ्ज राज
 महामत्तान चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतु । यस्मिं पदेसे मञ्जिमा
 दवता वत्थूनि परिग्गएहन्ति, मञ्जिमान तत्थ रञ्ज राजमहामत्तान
 चित्तानि नमन्ति निवेसनानि मापेतु । यस्मिं पदेसे नीचा देवता
 वत्थूनि परिग्गएहन्ति, नीचान तत्थ रञ्ज राजमहामत्तान चित्तानि
 नमन्ति निवेसनानि मापेतु ॥ यावता आनन्द ! अरिय आयतन यावता
 वणिप्पथो इद अग्ग नगर भविस्सति पाटलिपुत्त पुटभेदन ॥ पाटलि
 पुत्तस्स खो आनन्द ! तयो अन्तराया भविस्सन्ति अग्गतो वा,
 उदकतो वा, मियुभेदावा, ति ॥

(४०) अथ खो सुनिध वस्सकारा मगध महामत्ता येन भगवा, तेनुप-
 सङ्कमिंसु । उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धि सम्मादिंसु । सम्मोदनीय
 कथ सारणीयं वीतिसारत्वा एकमन्त अट्टसु । एकमन्त ठिता खो
 सुनिध वस्सकारा मगध महामत्ता भगवन्त एतदवोचु—‘अधियासतु नो

वास) ग्रहण कर रहे हैं। जिस प्रदेशम महाशक्ति-शाली (=महेसवर) देवता
 वास ग्रहण कर रहे हैं, वहाँ महा-शक्ति शाली राजाओं और राज महामात्याका चित्त,
 घर बनानेकी लगेगा। जिस प्रदेशम मध्यम देवता वास ग्रहण कर रहे हैं, वहाँ मध्यम
 राजाओं और राज महामात्योका चित्त घर बनानेकी लगेगा। जिस प्रदेशमे नीच
 देवता, वहाँ नीच राजाओं०। आनन्द! जितने (भी) आर्य आयतन (=आर्याके
 निवास) हैं, जितने भी वणिक्पथ (=न्यापार-मार्ग) हैं, (उनमें) यह
 पाटलिपुत्र, पुट भेदन (=मालकी गाँठ जहाँ तोड़ी जाय) अम (=प्रधान)
 नगर होगा। पाटलिपुत्रके तीन अन्तराय (=शत्रु) होंगे—आग, पानी और
 आपसनी फूट।”

(४०) तत्र मगध महामात्य सुनीध और धर्मकार जन्म भगवान् थ, वहाँ
 गये, जानर भगवान्के साथ समो,नरर एक ओर गळे हुए भगवान्से बोले—

भन्ते ! भव गोतमो अज्जतनाय भत्त सद्धिं भिक्खु संघेना, ति' ।
अधिवासेसि भगवा तुण्हिभावेन ॥

(४१) अथ खो सुनिध वस्सकारा मगध महामत्ता भगवतो अधिवासन विदित्वा येन सको आवसथो, तेनुपसङ्कमिंसु । उपसङ्कमित्वा सके आवसथे पणीत खादनीय भोजनीय पटियादापेत्वा भगवतो काल आरोचापेसु—'कालो भो गोतम ! निद्धित भत्तन्ति' ॥

(४२) अथ खो भगवा पुब्बन्ह समय निवासेत्वा पत्त चीवर-मादाय सद्धिं भिक्खु संघेन येन सुनिध वस्सकारान मगध महामत्तान आवसथो, तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा पञ्चत्ते आसने निसीदि । अथ खो सुनिध वस्सकारा मगध महामत्ता धुद्ध पमुख भिक्खु संघ पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्या सन्तप्पेसु सम्पवारेसु । अथ खो सुनिध वस्सकारा मगध महामत्ता भगवन्त भुत्ताविं ओणीत पत्त पाणिं अञ्जतर नीच आसन गहेत्वा एकमन्त निसीदिंसु । एकमन्त निसिन्नो खो सुनिध वस्सकारे मगध महामत्ते भगवा इमाहि गाथा हि अनुमोदि—

“भिक्षु संघ के साथ आप गौतम । हमारा आजका भात स्वीकार करें ।”

भगवान् ने मौनसे स्वीकार किया ।

(४१) तत्र ० सुनीथ वर्षकार भगवान् को स्वीकृति जान, जहाँ उनका आसथ (= डेरा) था, वहाँ गये । जाकर अपने आसथमे उत्तम खाद्य भोज्य तैयार करा (उन्होंने) भगवान् को समयकी सूचना दी ।

(४२) तत्र भगवान् पूर्वाह्न समय पहनकर, पात्र चीवर ले भिक्षु संघके साथ जहाँ मगध-महामात्य सुनीथ और वर्षकारका आसथ था, वहाँ गये, जाकर विद्धे आसनपर बैठे । तत्र सुनीथ, वर्षकारने बुद्धप्रमुख भिक्षु संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्यसे संतर्पित = सप्रगारित किया । तत्र ० सुनीथ वर्षकार, भगवान् के भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, दूसरा नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुए मगध-महामात्य सुनीथ, वर्षकारको भगवान् ने इन गाथाओंसे (दान) अनुमोदन किया—

(४३) यस्मिं पदेसे कप्पेति, वास पण्डित जातियो ।
 सीलवन्तेत्य भोजेत्वा, सञ्जते ब्रह्मचारियो ॥
 यातत्य देवता आसु, तास दक्खिणमादिसे ।
 पूजिता पूजयन्ति न, मानिता मानयन्ति न ॥
 ततो न अनुकम्पेन्ति, माता पुत्त व औरस ।
 देवतानुकम्पितो पोसो, सदा भद्रानि पस्सती, ति ॥

(४४) अथ खो भगवा सुनिध वस्सकारे मगध महामत्ते इमाहि
 गाथाहि अनुमोदित्वा उट्ठायासना पक्वामि । तेन खो पन समयेन सुनिध
 वस्सकारा मगध महामत्ता भगवन्त पिद्धितो पिद्धितो अनुबन्धा ह्योन्ति ।
 येनिञ्ज समणा गोतमो द्वारेन निक्खमिस्सति, त 'गौतम द्वार' नाम
 भविस्सति । येन तित्थेन गङ्ग नदिं तरिस्सति, त 'गौतम-तित्थ' नाम
 भविस्सती, ति । अथ खो भगवा येन द्वारेन निक्खमि, त गौतम द्वार
 नाम अहोसि । अथ खो भगवा येन गङ्गानदी, तेनुपसङ्कमि । तेन

(४३) "जिस प्रदेश (म) पटित्पुरुष, शीलवान्, सयमी,

ब्रह्मचारियोभो भोजन कराकर वास करता है ॥ १ ॥

"वहाँ जा देवता हैं, उहाँ दक्षिणा (=दान) देनी चाहिये ।

वह देवता पूजित हो पूजा करते हैं, मानित हो मानते हैं ॥ २ ॥

"तत्र (वह) औरस पुत्रों भोंति उसपर अनुबन्धा करते हैं ।

देवताओंसे अनुकम्पित हो पुरुष सदा मंगल देवता है ॥ ३ ॥"

(४४) तत्र भगवान् ० सुनिध और वर्षकारको इन गाथाओंसे अनुमोदन
 कर, आसनसे उठकर चले गये ।

उस समय ० सुनाथ, वर्षकार भगवान्के पीछे पीछे चल रहे थे—'अरण्य
 गौतम आज जिस द्वारमें निरलेंगे, वह गौतम द्वार होगा । जिस तीर्थ (=घाट)
 से गंगा नदी पार होंगे, वह गौतम तीर्थ होगा । तत्र भगवान् जिस द्वारसे
 निरता, वह गौतम द्वार हुआ । भगवान् जहाँ गंगा-नदी है, वहाँ गये । उस समय
 गंगा करारों धरानर भरी, करारपर बैठे कौबेके पीने योग्य थी । वीई आदमी नाव

खो पन समयेन गङ्गानदी पूरा होति । समतित्थिका काकपेय्या ।
अप्पेकच्चे मनुस्सा नाव परियेसन्ति । अप्पेकच्चे उलुम्प परियेसन्ति ।
अप्पेकच्चे कुल्ल बन्धन्ति पारा पार गन्तुकामा । अथ खो भगवा
सेव्यथापि नाम, बत्तवा पुरिसो समिञ्चित वा बाह पसारेय्य पमारित
वा बाह समिञ्जेय्य, एवमेव गङ्गाय नदिया थोरिम तीर अन्तरहितो
पारिमतीरे पच्चुट्ठासि सद्धिं भिक्खु संघेन । अइस खो भगवा
ते मनुस्से अप्पेकच्चे नाव परियेसन्ते, अप्पेकच्चे उलुम्प परियेसन्ते,
अप्पेकच्चे कुल्ल बन्धन्ते पारा पार गन्तुकामे । अथ खो भगवा
एतमत्थ विदित्वा ताथ वेत्ताय इम उदान उदानेसि—

(४५) ये तरन्ति अण्णवसर, सेतु कत्वा विसज्ज पल्ललानि ।

कुल्ल हि जनो पन्धति, न तिण्ण मेघाविनो जना, ति ॥

पठम भाणवार ॥ १ ॥

खोजते थे, कोई ० वेळा (= उलुम्प) खोजते थे, कोई ० वूला (= कुल्ल) बाँधते
थे । तब भगवान्, जैसे कि बलान् पुरुष समेटी बाँहको (सहज ही) फैला दे,
फैलाई बाँहना समेट ले, वैसे ही भिक्षु सरके साथ गंगा नदीके इम पारसे अन्तर्धान
हो, परले तीरपर जा गळे हुए । भगवान्ने उन मनुष्योंको देखा, कोई कोई नाव
खोज रहे थे ० । तब भगवान्ने इसी अर्थका जानकर, उसी समय यह उदान कहा—

(४५) ‘ (पटित) छोटे जलाशयों (= पल्ललो) को छोळ समुद्र और
नदियोंको सेतुसे तरते हैं ।

(जन तक) लोग वूला बाँधते रहते हैं, (तब तक) मेघानी जन तर गय
रहते हैं ॥

(इति) प्रथम भाणवार ॥ १ ॥

(४६) अथ खो भगवा आयस्मन्त आनन्द आमन्तेसि—“आया मानन्द ! येन कोटिगामो, तेनुपसङ्गमिस्तामा, ति” ॥ ‘एव भन्ते’, ति रो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्मोसि ॥

(४७) अथ सो भगवा महता भिक्खु सघेन मद्धि येन कोटिगामो, तदवसरि । तत्र सुद भगवा कोटिगामे विहरति । तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—“चतुन्न भिक्खवे ! अरिय सञ्चान अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिद दीघमद्धान सन्धावितं ससरित ममञ्चेव तुम्हाकञ्च, कतमेस चतुन्न ?

(४८) [१] दुक्खरस्स भिक्खवे ! अरिय सच्चस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिद दीघमद्धान सन्धावितं ससरित ममञ्चेव तुम्हाकञ्च ॥

[२] दुक्ख-समुदयस्स भिक्खवे ! अरिय-सच्चस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिद दीघमद्धान सन्धावितं संसरित ममञ्चेव तुम्हाकञ्च ॥

[३] दुक्ख-निरोधस्स भिक्खवे ! अरिय सच्चस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिद दीघमद्धान सन्धावितं संसरित ममञ्चेव तुम्हाकञ्च ॥

[४] दुक्ख निरोध-गामिनिया-पटिपदाय भिक्खवे ! अरिय

कोटिग्राम—

(४६) तत्र भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दना आमन्त्रित क्रिया—

“आओ आनन्द ! जहाँ कोटिग्राम है, वहाँ चलो ।” “अच्छा, मन्ते ।”

(४७) तत्र भगवान् भिक्षु संघके साथ जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ गये । वहाँ भगवान् काटिग्राममें विहार करत थे । भगवान्ने भिक्षुआरां आमन्त्रित क्रिया—

“भिक्षुओ ! चार आर्य सत्याके अनुबोध = प्रतिबोध न होनेसे इस प्रकार तीर्थकालसे (यह) दौड़ना = संसरण (= आघागमन) ‘भैरा और तुम्हारा’ हो रहा है । कौनसे चारोंमें ?

(४८) भिक्षुओ । [१] दुःख आर्य सत्याके अनुबोध प्रतिबोध न होनेसे ० ।

[२] दुःख-समुदय ० । [३] दुःख निरोध ० । [४] दुःख निरोध गामिनी प्रतिपद् ० ।

सच्चस्स अननुबोधो अप्पटिपेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं ससरितं
ममञ्चेव तुम्हारुञ्च ॥

तयिदं भिक्खवे ! दुक्खं अरियं सच्चं अनुबुद्धं पटिविद्धं । दुक्खं
समुदयं अरियं सच्चं अनुबुद्धं पटिविद्धं । दुक्खं निरोधं अरियं सच्चं
अनुबुद्धं पटिविद्धं । दुक्खं निरोधं गामिनिं पटिपदां अरियं सच्चं
अनुबुद्धं पटिविद्धं । उच्छिन्ना भव तएहा, खीणा भव नेत्ति ।
नत्थि दानि पुनब्भवो, ति ।

(४९) इधमवोच भगवा, इदं वत्तवानं सुगतो अथापरं एतदवोच सत्या—
चतुन्नं अरियं सच्चानं, यथाभूतं अद्दस्सना ।
ससरितं दीघमद्धानं, तासुतास्वेव जातिसु ॥
तानि एतानि दिट्ठानि, भव नेत्ति समूहता ।
उच्छिन्नं मूलं दुक्खस्स, नत्थि दानि पुनब्भवो, ति ॥

(५०) तत्र पि सुदं भगवा कोटिगामे विहरन्तो एतदेव बहुलं भिक्खुन
धम्मिं कथं करोति । 'इति सीलं, इति समाधिं, इति पञ्चा । सीलं
परिभावितं समाधिं महप्फलो होति महानिसंसो । समाधिं परिभाविता
पञ्चा महप्फला होति महानिससा । पञ्चा परिभावितं चित्तं सम्मदेव
आसवे हि विमुच्चति । सेय्ययिदं,—कामासवा भवासवा अविज्जासवा, ति' ।
भिक्खुओ ! सो इसं दु स आर्यं सत्येणे अनुबोधं प्रतिबोधं कियां ०, (तो) भवन्वृष्णा
उच्छिन्नं हो गई, भवनेत्री (= वृष्णा) चाण हो गई'

(४९) यह कहकर सुगत (= बुद्ध) ने और यह भी कहा—“चारों आर्य
सत्योंको ठीकसे न देखनेसे,

उन उन यानियोग दीर्घकालसे आवागमन हो रहा है ।

जब ये देख लिये जाते हैं, तो भवनेत्री नष्ट हो जाती है,

दुःखनी जल्ल फट जाती है, और फिर आवागमन नहीं रहता ।

(५०) वहाँ कोटिग्राममें विहार करते भी भगवान्, भिक्खुओंको बहुत करके
यही धर्म कथा कहते थे यह शीत ० । ०

(४६) अथ खो भगवा आयस्मन्त आनन्द आमन्तेसि—“आया मानन्द ! येन कोटिगामो, तेनुपसङ्गमिस्सामा, ति” ॥ ‘एव भन्ते’, ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पचस्सोसि ॥

(४७) अथ खो भगवा महता भिक्खु सघेन सद्धिं येन कोटिगामो, तदवसरि । तत्र सुद भगवा कोटिगामे विहरति । तत्र खो भगवा भिक्खु आमन्तेसि—“चतुन्न भिक्खवे ! अरिय सच्चान अननुवोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च, कतमेसं चतुन्न ?

(४८) [१] दुक्खस्स भिक्खवे ! अरिय सच्चस्स अननुवोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च ॥

[२] दुक्ख-समुदयरस्स भिक्खवे ! अरिय-सच्चस्स अननुवोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च ॥

[३] दुक्ख-निरोधस्स भिक्खवे ! अरिय सच्चस्स अननुवोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च ॥

[४] दुक्ख निरोध-गामिनिया-पटिपदाय भिक्खवे ! अरिय

कोटिग्राम—

(४६) तत्र भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दरो आमत्रितं क्रिया—

“आश्ना आनन्द ! जहाँ कोटिग्राम है, वहाँ चले ।” “अच्छा, भन्ते !”

(४७) तत्र भगवान् भिक्षु संघके साथ जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ गये । वहाँ भगवान् कोटिग्राममें विहार करने लगे । भगवान्ने भिक्षुओंको आमत्रित किया—

“भिक्षुओ ! चारों आय सत्याके अनुबोध = प्रतिबोध न होनेसे इस प्रकार दीर्घकालसे (यह) दौलना = मसरण (= आवागमन) ‘मेरा और तुम्हारा’ हो रहा है । कौनसे चारोसे ?

(४८) भिक्षुओ ! [१] दुःख आर्य सत्यके अनुबोध प्रतिबोध न होनेसे ० ।

[२] दुःख-समुदय ० । [३] दुःख निरोध ० । [४] दुःख निरोध-गामिनी प्रतिपत् ० ।

नाम भन्ते ! उपासको नातिके काल कतो, तस्स का गति, को अभिसम्परायो ? सुजाता नाम भन्ते ! उपासिका नातिके काल कता, तस्स का गति, को अभिसम्परायो ? कुम्भकटो नाम भन्ते ! उपासको नातिके काल कतो, तस्स का गति, को अभिसम्परायो ? कालिम्बो नाम भन्ते ! उपासको नातिके काल कतो, तस्स का गति, को अभिसम्परायो ? निकटो नाम भन्ते ! उपासको, कटिस्सहो नाम भन्ते ! उपासको, तुट्टो नाम भन्ते ! उपामको, सन्तुट्टो नाम भन्ते ! उपासको, भद्दो नाम भन्ते ! उपासको, सुभद्दो नाम भन्ते ! उपासको नातिके काल कतो, तस्स का गति, को अभिसम्परायो, ति ?

(५३) साल्हो आनन्द ! भिक्षु आसवान खया अनासव चेतो विमुत्तिं पञ्चा विमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सय अभिञ्जा सच्छि कत्वा उपसम्पज्ज विहासि । नन्दा नाम आनन्द ! भिक्षुणी पञ्चन्न ओरम्भागियान सयोजनान परिक्खया ओपपातिका तत्थ परिनिब्बायिनी अनावत्ति घम्मा तस्मा लोका । सुदत्तो आनन्द ! उपासको तिण्ण सयोजनानं परिक्खया राग दोस मोहान तनुत्ता सकदागामि सकिदेव इम लोक आगन्त्वा दुक्खस्सन्त करिस्सति । सुजाता आनन्द ! उपासिका

सुजाता उपासिका ० ककुध उपासक ० कालिंग उपासक ० निकट उपासक ० कटिस्सह उपासक ० तुट्ट उपासक ० सन्तुट्ट उपासक ० भद्द उपासक ० भन्त ! सुभद्द उपासक नादिकामे मर गया, उसरी ज्या गति = ज्या अभिसम्पराय हुआ ?”

(५३) “आनन्द । साल्ह भिक्षु इसी जन्ममे आसवो (=चित्तमलों) के क्षयसे आसव-रहित चित्तकी मुक्ति प्रज्ञा विमुक्ति (=ज्ञानद्वारा मुक्ति) का स्वयं जानकर साक्षात्कर प्राप्तकर बिहार कर रहा था । आनन्द ! नन्दा भिक्षुणी पाँच अवरभागीय संयोजनोंके क्षयसे देवता हो वहाँसे न लौटनगाली (अनागामी) हो वहा (देवलान्ममे) निर्वाण प्राप्त करेगी । सुदत्त उपासक आनन्द । तीन संयोजनोंके क्षय होनेसे, राग द्वेष मोहके दुबल होनेसे सकदागामी हुआ, एक ही बार इस लोकमे और आकर हुआ अन्त करेगा । सुजाता उपासिका तीन संयोजनोंके

(५१) अथ खो भगवा कोटिगामे यथाभिरन्त विहरित्वा आयस्मन्तं
आनन्दं आमन्तेसि—“आयामानन्द ! येन नातिका, तेनुपसङ्ग
मिस्सामा, ति” ।

‘एष भन्ते’, ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पद्यस्सोसि ।

अथ खो भगवा महता भिक्षु सघेन सद्धिं येन नातिका, तदवसरि ।

तत्र पि सुद भगवा नातिके विहरति गिञ्जकावसथे ।

(५२) अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा, तेनुपसङ्गमि । उपसङ्ग-
मित्वा भगवन्त अभिवादत्वा एकमन्त निसीदि । एकमन्त निसिन्नो खो
आयस्मा आनन्दो भगवन्त एतदवोच । साल्हो नाम भन्ते ! भिक्षु नातिके
काल कतो, तस्स का गति, को अभिसम्परायो ?; नन्दा नाम भन्ते !
भिक्षुनी नातिके काल कता, तस्सा का गति, को अभिसम्परायो ?, सुदत्तो

नादिका—

(५१) तत्र भगवान् कोटिगामे इच्छानुसारं विहारकर, आयुष्मान् आनन्द
का आमन्त्रित किया —

“आओ आनन्द ! जहाँ नादिका* (=नादिका) है, वहाँ चलो।”
‘अच्छा, भन्त !’

तत्र भगवान् महान् भिक्षु सघ के साथ जहाँ नादिका है, वहाँ गये । वहाँ
नादिकाम भगवान् गिञ्जकावसथम विहार करते थे ।

धर्म आदर्श

(५२) तत्र आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को
अभिवादनकर एक आर बैठ गये । एक आर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से
यह कहा—

“भन्त ! साल्ह भिक्षु नातिका म मर गया, उसकी क्या गति = क्या
अभिसम्पराय (=परलोक) हुआ ? नन्दा भिक्षुणी ० सुदत्त उपासक ०

करेय्य तस्मिं येव काल कते तथागत उपसङ्कमित्वा एतमत्य पुच्छिस्सथ ।
विहेसाहेसा आनन्द ! तथागतस्स । तस्मा ति हानन्द ! धम्मदास्स
नाम धम्म परियाय देसेस्सामि । येन समन्नागतो अरिय सावको
आकङ्खमानो अत्तनाव अत्तान व्याकरेय्य —“खीण निरयोम्हि, खीण
तिरच्छान योनि, खीण पिच्चि विसयो, खीणा पाय दुग्गति विनिपातो
सोतापन्नो हमस्मि अविनिपात धम्मो नियतो सम्भोधि परायनो, ति” ।

(५५) कतमो च सो आनन्द ! धम्म-दासो, धम्म-परियायो ?
येन समन्नागतो अरिय सावको आकङ्खमानो अत्तनाव अत्तान व्याकरेय्य
“खीण निरयोम्हि, खीण तिरच्छान योनि, खीण पिच्चि विसयो, खीणा-
पाय, दुग्गति विनिपातो, सोतापन्नो हमस्मि, अविनिपात धम्मो, नियता
सम्भोधि परायनो, ति” ।

[१] इधानन्द ! अरिय सावको बुद्धे अयेच पसादेन समन्नागता हेति,
“इति पि सो भगवा अरह सम्मा सम्बुद्धो विज्जा चरण सम्पन्नो सुगतो
लोकविद् अनुत्तरो पुरिस दम्म सारथि सत्था देव-मनुस्सान बुद्धो
भगवा, ति” ।

देना है । इसलिये आनन्द ! धर्म आदर्श नामक धर्म पर्याय (= उपदेश) को
उपदेशता हैं । जिसमें युक्त हानेपर आर्यम्भावक स्वय अपना व्याकरण (= भविष्य
कथन) कर सकेगा—‘मुझे नरक नहीं, पशु नहीं, प्रेत योनि नहीं, अपाय=दुर्गति=
विनिपात नहीं । मैं न गिरनेवाला बोधिके रास्तेपर स्रोतआपन्न हैं ।’

(५५) आनन्द ! क्या है वह धर्मादर्श धर्मपर्याय ० ?—[१] *आनन्द !
जो आर्यम्भावक बुद्धमें अयत्त श्रद्धायुक्त होता है—‘वह भगवान् अर्हत्, सम्यक्
संबुद्ध (= परमज्ञानी), विद्या आचरण युक्त, सुगत, तोरुन्दि, पुरुषाके दमन करनेमें
अनुपम चावुक सवार, दवता-प्रों और मनुष्योंके उपदेशक बुद्ध (= ज्ञानी) भगवान् हैं ।’

* यही तीनों वाक्य-समूह त्रिरत्त (= बुद्ध धर्म एत) की अनुस्मृति (= स्मरण),
कही जाती है ।

तिण्ण सयोजनान परिक्खया सोतापन्ना अविनिपात धम्मा नियता सम्बोधि परायणा । कुम्भकुटो नाम आनन्द ! उपासको पञ्चन्न श्रोरम्भा गियान सयोजनान परिक्खया श्रोपपातिको तत्थ परिनिव्वायि अनावत्ति धम्मो तस्मा लोका । कालिम्बो आनन्द ! उपासको ० । निकटो आनन्द ! उपासको ० । कटिस्सहो आनन्द ! उपासको ० । तुट्टो आनन्द ! उपासको ० । सन्तुट्टो आनन्द ! उपासको ० । भद्दो आनन्द ! उपासको ० । सुभद्दो आनन्द ! उपासको ० । पञ्चन्न श्रोरम्भागियान सयोजनान परिक्खया श्रोपपातिको तत्थ परिनिव्वायि अनावत्ति धम्मो तस्मा लोका । परो पञ्चास आनन्द ! नातिके उपासका कालङ्कता पञ्चन्न श्रोरम्भागियान सयोजनान परिक्खया श्रोपपातिका तत्थ परिनिव्वायिनो अनावत्ति धम्मा तस्मा लोका । साधिका नवुत्ति आनन्द ! नातिके उपासका काल कता तिण्ण सयोजनान परिक्खया राग दोस मोहान तनुत्ता सकदागामिनो सकिदेव इम लोक आगन्त्वा दुक्खस्सन्त करिस्मन्ति । नातिके आनन्द ! पञ्चसत्तानि नातिके उपासका काल कता तिण्ण सयोजनान परिक्खया सोतापन्ना अविनिपात धम्मा नियता सम्बोधि परायणा ।

(५४) अन्नच्छरिय खो पनेत्त आनन्द ! य मनुस्स भूतो काल क्षयमे न गिग्गेणाले बोधिं रात्ते पर आरूढ हो स्रोतश्चापन्न दुई । वकुध ० अनागामी ० । कालिग ० । निकट ० । कटिस्सह ० । तुट्ट ० । मंतुट्ट ० । भद्द ० । सुभद्द उपासक आनन्द । पाँच अन्नभागीय सयोजनेके क्षयस देवता हो वहाँसे न लौटने वाला (=अनागामी) हो वहा (देवलोके) निर्माण प्राप्त करनेवाला है । आनन्द ! नादिगामे पचाससे अधिक उपासक मरे हैं, जो सभी ० अनागामी ० हैं । ० तत्रेसे अधिक उपासक ० सट्टदागामा ० । ० पाँचसौसे अधिक उपासक ० स्रोत आप्त ० ।

(५५) आनन्द ! यह ठीक नहीं, कि जो कोई मनुष्य मरे, उसके मरनेपर तथागतके पास आकर इम बातको पूछा जाय । आनन्द ! यह तथागत ने कष्ट

विसयो, खीणापाय, दुग्गति विनिपातो, सोतापन्नो हमस्मि, अविनिपात धम्मो, नियतो सम्बोधि परायणो, ति ।

तत्र पि सुद भगवा नातिके विहरन्तो गिञ्जकावसथे एतदेव बहुल भिक्खून धम्मि कथ करोति । 'इति सील, इति समाधि, इति पञ्चा । सील परिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिससो । समाधि परिभाविता पञ्चा महप्फला होति महानिससा । पञ्चा परिभावित चित्त सम्पदेव आसवे हि विमुच्चति । सेय्ययिद,—कामासवा, भवासवा, अविज्जासवा, ति' ।

(५६) अथ खो भगवा नातिके यथाभिरन्त विहरित्वा आयस्मन्त आनन्द आमन्तेसि—'आयामानन्द ! येन वेसाली, तेनुपसङ्गमिस्सामा, ति' ।

'एव भन्ते', ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पचस्सोसि ।

(५७) अथ खो भगवा महता भिक्खु-सघेन सद्धि येन वेसाली, तद्वसरि । तत्र सुद भगरा वेसालिय विहरति "अम्बपालि-वने" ।

तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"सतो भिक्खवे ! भिक्खु विहारेय्य सम्पजानो । अथ वो अम्हाक अनुसासनी" । कथञ्च भिक्खवे !

(= उत्तम) वान्त, शीलौ (= सदाचारो) मे युक्त होता है । आनन्द ! यह धर्मान्तर धर्मपर्याय है ०"

वहाँ नातिका में विहार करते भी भगवान् भिक्षुओं को यही धर्मकथा ० ।

(५६) तत्र भगवान्ने नातिका में इच्छानुसार विहाकर आयुष्मान् आनन्दके आमन्त्रित किया—“आओ आनन्द ! जहाँ वैशाली है, वहाँ चलें । अच्छा, भन्ते ।”

अम्बपाली गणिका का भोजन

(५७) ० तत्र भगवान् महाभिक्षु-संघक साथ जहाँ वैशाली थी वहाँ गये । वहाँ वैशालीमें अम्बपाली वन में विहार करते थे ।

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंसे आमन्त्रित किया—

“भिक्षुओ ! स्मृति और भ्रजजन्यक साथ विहार करो, यही हमारा अनुशासन है । कैसे भिक्षु स्मृतिमान् होता है ? जब भिक्षुओ ! भिक्षु कायामें काय अनुपश्यो

[२] धम्मो अवेच पसाटेन समन्नागता होति, "स्वावस्वातो भगवता धम्मो सन्दिद्धिको थकालिरो एहिपस्मिको थोपनेट्ठिको पच्च वेदितव्वो विञ्जूही, ति ।"

[३] सधे अवेच पसादेन समन्नागतो होति, "सुप्पट्ठिपन्ना भगवतो सावक सघो, उजुप्पट्ठिपन्ना भगवतो सावक सघो, वायप्पट्ठिपन्ना भगवतो सावक सघो, सामिच्चिप्पट्ठिपन्ना भगवतो सावक सघा, यदिद चत्तारि पुरिस युगानि अट्ट पुरिस पुग्गला एस भगवतो सावक सघा, आहुनेय्यो पाहुनेय्यो दक्खिण्यो अञ्जली करणीयो अनुत्तर पुञ्जत्तेत्त लोकस्सा, ति ।"

[४] अरिय कन्ते हि सीले हि समन्नागतो हाति । अखण्डे हि अद्धिदहि असवलेहि अकम्मासे हि भुजिस्सो हि विञ्जूपसट्ठे हि अपरामट्ठे हि समाधि सवत्तनिके हि । अय खो सो आनन्द ! धम्मदासो धम्मपरियायो येन समन्नागतो अरिय सावको आकङ्खमानो अतनाव अत्तान व्याकरथ्य, खीण निरयोम्हि, खीण तिरच्छान योनि, खीण पिच्छ-

[०] ० धर्ममें अत्यन्त श्रद्धासे युक्त होता है—'भगवान्का धर्म स्वारथात (=सुन्दर रीतिसे कहा गया) है, वह सांघट्टिक (= इसी शरीरसे फल देनेवाला), अनालिक (= कालांतरमें ननों मग्य फलप्रद), एहिपस्मिक (= यहाँ दिग्बाई देनेवाला), औपनयिक (= निर्वाणक पास ल जावाला), विज (पुरुष) को अपने अपने भीतर (ही) विदित होनावाला है ।' [३] ० संघम अत्यन्त श्रद्धासे युक्त होता है—'भगवान्का श्रावक (= शिष्य) संघ सुमार्गारूढ है, भगवान्का श्रावक सघ सरल मार्गपर आरूढ है, ० न्याय मार्गपर आरूढ है, ० ठोफ मार्गपर आरूढ है, यह चार पुरुष युगल (स्रोत आपन्न, सट्टदागामी, अनागामी और अर्हत) और आठ पुरुष = पुद्गल हैं, यही भगवान्का श्रावक-संघ है, (जोकि) आह्वान करन योग्य है, पाहुना बनाने योग्य है, धान देन योग्य है, हाव जाउन योग्य है, और छोड़ने लिये पुराय (बोने) का क्षेत्र है ।' [४] और अत्तत्ति, निर्दोष, निर्मल, निष्कल्मष, मजनीय, विज प्रशसित, आर्य

विसयो, स्त्रीणापाय, दुग्गति विनिपातो, सोतापन्नो हमस्मि, अविनिपात घम्मो, नियतो सम्बोधि परायनो, ति ।

तत्र पि सुद भगवा नातिके विहरन्तो गिञ्जकावसथे एतदेव बहुल भिक्खुन धम्मि कय करोति । 'इति सील, इति समाधि, इति पञ्चा । सील परिभाविता समाधि महप्फलो होति महानिससो । समाधि परिभाविता पञ्चा महप्फला होति महानिससा । पञ्चा परिभावित चित्त सम्पदेव आसवे हि विमुच्चति । सेच्यथिद,—कामासवा, भवासवा, अविज्जासवा, ति' ।

(५६) अथ खो भगवा नातिके यथाभिरन्त विहरित्वा आयस्मन्त आनन्द आमन्तेसि—'आयामानन्द ! येन वेसाली, तेनुपसङ्गमिस्सामा, ति' ।

'एव भन्ते', ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पचस्सोसि ।

(५७) अथ खो भगवा महता भिक्खु-सघेन सद्धि येन वेसाली, तदवसरि । तत्र सुद भगवा वेसालिय विहरति "अम्बपालि-वने" ।

तत्र खो भगवा भिक्खु आमन्तसि—"सतो भिक्खवे ! भिक्खु विहरंग्य सम्पजानो । अथ वो अम्हाक अनुसासनी" । कयञ्च भिक्खवे !

(= उत्तम) दान्त, शीलं (= सदाचारं) से युक्त होता है । आनन्द ! यह धर्मान्श धर्मपर्याय है ०।"

वहाँ त्तिका में विहार करते भी भगवान् भिक्षुओं को यही धर्मकथा ० ।

(५६) तत्र भगवान्ने नातिना में इच्छानुसार विहारकर आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—“आश्रा आनन्द । जहाँ वैशाली है, वहाँ चलें । अच्छा, भन्त ।”

अम्बपाली गणिका का भोजन

(५७) ० तत्र भगवान् महाभिक्षु संघक साथ जहाँ वैशाली थी वहाँ गये । वहाँ वैशालीमें अम्बपाली वन में विहार करते थे ।

वहाँ भगवान् भिक्षुओंको आमन्त्रित किया—

“भिक्षुओ ! स्मृति और संप्रज्ञत्यके साथ विहार करो, यही हमारा अनुशासन है । कैसे भिक्षु स्मृतिमान् होता है ? जन भिक्षुओ ! भिक्षु कायामे काय अनुपश्यो

भिवसु सतो हाति ? इष भिवखवे ! भिवसु काये कायानुपस्मी विहरति
 आनापी सम्पजाना मतिमा विनेय्य लोके अभिज्झा दोमनस्स । वेदनासु
 चित्ते धम्मेषु धम्मानुपस्मी विहरति आनापी सम्पजानो मतिमा विनेय्य
 लोके अभिज्झा दोमनस्स । एव सों भिवखवे ! भिवसु सतो हाति ।

(५८) कथञ्च भिवखवे ! भिवसु सम्पजानो हाति ? “इय भिवखव ।
 भिवसु अभिक्कन्ते पटिक्कन्ते सम्पजान कारी हाति । आलोक्किने विलाक्कि
 सम्पजान कारी हाति । ममञ्जिते पसारिते सम्पजान कारी हाति ।
 संघाटि पच चीवर धारणे सम्पजान-कारी हाति । असिते पिते म्वायिते
 मायिते सम्पजान कारी हाति । उच्चार पम्माव कम्मे सम्पजान-कारी
 हाति । गते ठिते निमिधे सुत्ते जागरित भामिते तुण्हिहावे सम्पजान
 कारी हाति । एव खो भिवखवे ! भिवसु सम्पजानो हाति । सतो
 भिवखवे ! भिवसु विहरेय्य सम्पजानो । अयं वो अम्हाक अनु
 सासनी”, ति ।

(=शरीरका समस्त अनापटके अनुसार कश्च नख-सलमूत्र आदि क रूप में ज्ञेयता) हो,
 ल्योगशील, अनुभवज्ञान-(=संप्रज्ञ) युक्त, स्मृतिमान्, लोकरे प्रति लाभ और
 द्वेष दृष्टान्त विहरता है । वेदनाश्रों (=सुख दुःख आदि) में वेदानुपरयी हो ।
 चित्तमे चिन्तानुपरयी हो । धर्ममें धर्मानुपरयी हो । इस प्रकार भिक्षु स्मृतिमान्,
 होता है ।

(५८) कैसे संप्रज्ञ (=संप्रज्ञान) होता है । जब भिक्षु जात हुये तमन
 आगमन करता है । जानते हुये आलोचन-विलाकन करता है । ० सिकोळना फैलाना ० ।
 ० सपाटी पात्र चीवरके धारण करता है । ० आमन, पान, ग्राहन आम्हादन
 करता है । ० पायाना, पेशाव करता है । चलते, खळे होने, बैठते, सोत, जागते,
 बोलते, चुप रहते जानकर कर्मशाला होता है । इस प्रकार भिक्षुओ । भिक्षु संप्रज्ञानकारी
 होता है । इस प्रकार संप्रज्ञ होता है । भिक्षुओ । भिक्षुका स्मृति और संप्रज्ञ य
 युक्त विहरना चाहिये, यही हमारा अनुशासन है ।’

(५९) अस्सोमि खो अम्बपाली गणिका—‘भगवा फिर वेसालि अनुप्पत्तो वेसालिय विहरति मय्ह अम्बवने, ति’ । अय खो अम्बपाली गणिका भद्धानि भद्धानि यानानि योजापेत्वा भद् भद् यान अभिरूहित्वा भद्दे हि भद्दे हि याने हि वेसालिया निट्ठयासि । येन सको आरामो, तेन पायासि । यावत्तिका यानस्स भूमि यानेन गन्त्वा याना पच्चोरोहित्वा पत्तिकाव येन भगवा, तेनुपसङ्गमि । उपसङ्गमित्वा भगवन्त अभिवादेत्वा एकमन्त निसीदि ।

एकमन्त निसिन्न खो अम्बपालि गणिक भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि संपहसेसि ।

अय खो अम्बपाली गणिका भगवता धम्मिया कथाय सन्दस्सिता समादपिता समुत्तेजिता संपहसिता भगवन्त एतद्वोच,—

“अधिवासेतु मे भन्ते ! भगवा स्वातनाय भत्त सद्धि भिक्खु—संघेना, ति” ।

अधिवासेसि भगवा तुण्हभावेन ।

(५९) अम्बपाली गणिकाने सुना—भगवान् वैशाली में आये हैं, और वैशालीमें मेरे आश्रममें विहार करते हैं । तत्र अम्बपाली गणिका सुन्दर सुन्दर (=भद्र) यानोंको जुळवाकर, एक सुन्दर यान पर चढ़ सुन्दर यानोंक साथ वैशाली से निकली, और जहाँ उसका आराम था, वहाँ चली । जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जाकर, यानसे उतर पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई । एक ओर बैठी अम्बपाली गणिकाको भगवान्ने धार्मिक-कथासे सदृशित समुत्तेजित किया । तत्र अम्बपाली गणिका भगवान्से यह बोली—

‘भन्ते ! भिक्षु-संघके साथ भगवान् मेरा कलक भाजन स्वीकार करें ।’

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया ।

(६०) अथ खो अम्बपाली गणिका भगवतो अधिवासन विदित्वा उद्घायामना भगवन्त अभिवादेत्वा पद्मविलस्यं कत्वा परामि ।

(६१) अस्मांसु सा वेशालिका लिच्छवी—‘भगवा फिर वेशालि अनुपपत्तो वेशालिय विहरति अम्बपालिवने, ति’ । अथ खो ते लिच्छवी भद्धानि भद्धानि यानानि योजापत्वा भद् भद् यान अभिरूहित्वा भद्दे हि भद्दे हि याने हि वेशालिया निर्यिसु । तत्र एकश्चे लिच्छवी नीला होन्ति, नीलवणणा, नीलवत्या, नीला लङ्कारा । एकश्चे लिच्छवी पीता होन्ति, पीत वणणा, पीत वत्या, पीता लङ्कारा । एकश्चे लिच्छवी लोहिता होन्ति, लोहित वणणा, लोहित वत्या, लोहिता—लङ्कारा । एकश्चे लिच्छवी श्रोदाता होन्ति, श्रोदात वणणा, श्रोदात वत्या, श्रोदाता-लङ्कारा ।

अथ खो अम्बपाली गणिका दहरान दहरानं लिच्छवीन अक्खेन अक्ख चक्केन चक्क युगेन युग पटिवट्टेसि । अथ खो ते लिच्छवी अम्बपालि गणिक एतदवोचु,—‘किं जे अम्बपालि ! दहरान दहरान लिच्छवीन अक्खेन अक्ख चक्केन चक्क युगेन-युग पटिवट्टेसी, ति ?’

(६०) तत्र अम्बपाला गणिका भगवान्नीं स्वीकृति जान, आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई ।

(६१) वेशालीक लिच्छवियोंन सुना—‘भगवान् वेशालीमें आये हैं ०’ । तत्र वह लिच्छवि ० सुन्दर यानापर आरूढ़ हो ० वेशालीसे निकले । उनमें कोई कोई लिच्छवि नीले = नील-वर्ण नील-वस्त्र नील अलंकारवाले थे । कोई कोई लिच्छवि पीले ० थे । ० लोहित (= लाल) ० । ० अश्रुता (= सफेद) ० । अम्बपाला गणिकाने तन्वण तरुण लिच्छवियों के धुरोंसे धुरा, चक्कोंसे चक्का, जूयोंसे जुआ टकरा दिया । उन लिच्छवियोंने अम्बपाली गणिकासे कहा—

‘जे ! अम्बपाला ! क्यों तरुण तरुण (= दहर) लिच्छवियोंके धुरोंसे धुरा टकराता है १०’

(६२) “तथा हि पन मे अट्ठयपुत्ता ! भगवा निमन्तितो स्वातनाय भत्त सद्धिं भिक्खु सघेना, ति ।”

(६३) “देहि जे अम्भपालि ! एक भत्त सत्त सहस्सेना, ति ।”

(६४) “सत्तेपि मे अट्ठयपुत्त ! वेसालिं साहार दस्सय, एवमह त भत्त न दस्सामी, ति ।”

(६५) अथ खो ते लिच्छवी अङ्गुलिं फोटेसु ‘जितम्हा वत भो अम्बफाय !, जितम्हा वत भो अम्बफाया, ति !!’

(६६) अथ खो ते लिच्छवी येन अम्बपालि वन, तेन पार्यिसु । अइस खो भगवा ते लिच्छवी दूरतोव आगच्छन्ते दिस्वा भिक्खु आमन्तेसि—
“येस भिक्खवे ! भिक्खुन देवा तावत्तिसा अदिट्ठा । ओलोकेय भिक्खवे ! लिच्छवी परिस, अपलोकेय भिक्खवे ! लिच्छवी परिस !!, उपसहरथ भिक्खवे ! लिच्छवी परिसं तावत्तिसा सदिसन्ति !!!

(६०) “आर्यपुत्रो ! ज्योंकि मैं भिक्षु-सघके साथ कलने भाजनके लिये भगवान् को निमन्त्रित किया है ।”

(६३) “जे । अम्बपाली । सौ हजार (कार्पापण)से भो इस भात (भोजन)के (हम करनेके लिये) दे ।”

(६४) “आर्यपुत्रा । यदि चैशाली जनपद भो दो, तो भी इस महान् भातके न दूँगी ।”

(६५) तत्र उन लिच्छवियोंने अँगुलियों फोड़ों—

“अरे ! हमे अम्बिकाने जीत लिया, अरे ! हमे अम्बिकान वचित कर दिया ।”

(६६) तत्र वह लिच्छवि जहाँ अम्बपाली-वन था, वहाँ गये । भगवान्ने दूरसे ही लिच्छवियोंके आते देखा । देखकर भिक्षुआके आमन्त्रित किया—

“अपलोचन करो भिक्षुओ । लिच्छवियोंकी परिषद्को । अवलोचन करो भिक्षुओ । लिच्छवियोंकी परिषद्को । भिक्षुओ ! लिच्छवि परिषद्का त्रायस्त्रिंश (देव - परिषद् समस्ता (=उप सहरथ) ।”

(६७) अथ खो ते लिच्छवी यारतिता यानस्म भूमि यानेन गन्ता याना एषो रोहित्वा पत्तिशाय येन भगवा, तेनुपमद्रूमिणु । उपमद्रूपिवा भगवन्त अभिवादेत्वा एकयन्त निर्मादिणु । एकयन्त निमिच्छे त्वा त लिच्छवी भगवा धम्मिया कयाय मन्दस्तेसि, समादपेमि समुत्तेज्जिणि सपहससि । अथ खो ते लिच्छवी भगवता धम्मिया कयाय मन्दस्सिता समादपिता समुत्तेज्जिता सपहमिता भगवन्तं एतद्वोचु—

“अधिरासतु ना भन्त ! भगवा स्वातनाय भसं सदिं भिरतु सधेना, ति ।”

(६८) अथ खो भगवा ते लिच्छवी एतद्वोच, — “अधियुत खो मे लिच्छवी स्वातनाय अम्म्यपालिया गणिकाय भत्तन्ति ।”

(६९) अथ खो ते लिच्छवी अहुलिं फोटेसु—‘जितग्हा वत भा अम्म्यकाय ! जितग्हा वत भो अम्म्यकाया, ति ॥’

अथ खो ते लिच्छवी भगवता भामित अभिनन्दित्वा अनुमादित्वा उद्दयामना भगवन्त अभिवादेत्वा पदविसरणं कत्वा परामिणु ।

(६७) तब वह लिच्छवि ० रथसे उतरकर पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्को अभिवादाकर एक ओर बैठ । एक ओर बैठे लिच्छवियोंका भगवान्को धामिक कथासे ० समुत्तेजित ० किया । तब वह लिच्छवि ० भगवान्से बोले—

“भन्ते ! भिक्षु-भावक साथ भगवान् हमारा कतना भोजन खोहार करें ।”

(६८) “लिच्छविया ! क्या ता, मैंने अम्म्यपाली गणिका या भोजन खोहार कर दिया है ।”

(६९) तब उन लिच्छवियों अँगुलियों फोड़ी—

“अर ! हमें अम्म्यकाने जीत लिया । अर ! हम अम्मिकान बचित कर दिया ।”

तब वह लिच्छवि भगवान्के भाषणको अभिनन्दितकर अनुमादितकर, आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रणक्षिणाकर चले गये ।

(७०) अथ खो अम्बपाली गणिका तस्मा रत्तिया अच्चयेन सके आरामे पणीत खादनीय भोजनीय पटियादापेत्वा भगवतो फाल आरोचापेमि—“कालो भन्ते ! निद्धित भत्तन्ति !”

(७१) अथ खो भगवा पुञ्चएह समय निवासेत्वा पत्त चीवर-पादाय सद्धि भिक्खु सघेन येन अम्बपालिया गणिकाय निवेसन, तेनुपसङ्गमि । उपसङ्गमित्वा पञ्चत्ते आसने निसीदि । अथ खो अम्बपाली गणिका बुद्ध पमुख भिक्खु-सघ पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्या सन्तप्पेसि सपवारेसि । अथ खो अम्बपाली गणिका भगवन्त भुत्ताविं ओणीय पत्त पाणि अञ्चतर नीचं आसन गहेत्वा एकमन्त निसीदि । एकमन्त निसिन्ना खो अम्बपाली गणिका भगवन्त एतदवोच—“इमाह भन्ते । आराम बुद्ध-पमुखस्स भिक्खु सघस्स दम्मी, ति । पटिग्गहेसि भगवा आराम ।”

अथ खो भगवा अम्बपालिं गणिकं घम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समाटपेत्वा समुत्तेजेत्वा सपहसेत्वा उट्ठायासना पक्कमि ।

(७०) अम्बपाली गणिकाने उस रातके बीतनेपर, अपने आराममें उत्तम राग्य भोज्य तैयारकर, भगवान्‌के समय सूचित किया ।

(७१) भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र चीवर ले भिक्षु संघके साथ जहाँ अम्बपालीका परोसनवा स्थान था, वहाँ गये । जाकर विद्ये आसन पर बैठे । तब अम्बपाली गणिकाने बुद्ध प्रमुख भिक्षु सघके अपने हाथमें उत्तम राग्य भोज्य द्वारा संतपित=संप्रसारित किया । तब अम्बपाली गणिका भगवान्‌के भोजनकर पात्रस हाथ खींच लेनेपर, एक नीचा आमन ले, एक ओर बैठ गई । एक ओर बैठे अम्बपाली गणिका भगवान्‌से बोली —“भन्ते ! मैं इस आरामके बुद्ध प्रमुख भिक्षु सघके देती हूँ ।”

भगवान्‌ने आरामके स्वीकार किया । तब भगवान् अम्बपाली ० के धार्मिक कथासे० समुत्तेजित०कर उठकर चले गये ।

(७२) तत्र सुद भगवा वेसानिय विहरन्ते। अम्बपालिवने एतदेव बहुल भिखुन धम्मि फय करानि, 'इति मीन, इति समाधि, इति पञ्चा । मोल परिभाविता ममाधि महप्फला हानि महानिसंसो । समाधि परिभाविता पञ्चा महप्फला हाति महानिसंसा । पञ्चा परिभावित चित्त सम्पद्व आसयहि विमुचति। सेय्यपिट,—फामामवा, भवामवा, अविज्जामवा, ति'।

(७३) अथ ग्वा भगवा अम्बपालिवन यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्त आनन्द आमतेसि—'आयामानन्द ! येन वेलुवगामके तेनुपसङ्गमिस्सामा, ति' ।

'एव भन्ते', ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पशम्सोसि ।

अथ खा भगवा महता भिखु-संघेन सद्धि येन वेलुवगामके, तन्व सरि। तत्र सुद भगवा वेलुवगामके विहरति । तत्र खो भगवा भिखु आमन्तेसि—“एय तुम्हं भिक्खवे ! समन्ता वसालिं यया मित्त यया सन्दिट्ट यया सम्भत्त वस्सं उपेय । अहं पन इधेव वेलुवगामके वस्सं उपगच्छामी, ति” ।

'एव भन्ते', ति ग्वा ते भिखु भगवतो पटिस्सुत्त्वा समन्ता वेसालिं यया मित्त यया सन्दिट्टं यया सम्भत्त वस्सं उपगच्छिसु । भगवा पन तत्थेय वेलुवगामके वस्सं उपगच्छि ।

(७२) वहाँ वैशालीमें विहार करते भा भगवान् भिक्षुओंका बहुत करके यही धर्म तथा कहते थे ० ।

बेलुव-ग्राम—

(७३) ० तत्र भगवान् मगधिलु-संघके साथ जहाँ बेलुव गामक (=बेलुव ग्राम) था, वहाँ गये । वहाँ भगवान् बेलुव गामकमें विहरते व । भगवान्ने वहाँ भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

“आओ भिक्षुओ । तुम वैशालीके चारों ओर मित्त, परिचित देसकर बपारास करो । मैं यहाँ बेलुव-ग्रामकमें वर्षावास करूँगा ।” “अन्दा, भन्ते !” भगवान् भी उसी बेलुव ग्राम में वर्षावास करने लगे ।

(७४) अथ खो भगवतो वस्सुपगतस्स खरो आबाधो उपडिज वाल्हा वेदना वत्तन्ति मारणन्तिका । तत्र सुदं भगवा सतो सम्पजानो अधिवासेसि अविहञ्चमानो । अथ खो भगवतो एतदहोसि, “न खो मे त पतिरूप स्वाह अनामन्तेत्वा उपट्ठाके अनपलोकेत्वा भिक्खु संघ परिनिब्बायेय्य । य नूनाह इम आबाध वीरियेण पटिपणामेत्वा जीवित सङ्खार अधिद्वाय विहरय्यन्ति” ॥

अथ खो भगवा त आबाध वीरियेण पटिपणामेत्वा जीवित सङ्खार अधिद्वाय विहासि । अथ खो भगवतो सो आबाधो पटिप्पस्सम्भि ।

(७५) अथ खो भगवा गिलानावुद्धितो अचिर बुद्धितो गेलञ्जा विहारा निवस्सम्म विहार पच्छाया य पञ्चत्ते आसने निसीदि ।

अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा भगवन्त अधिवादेत्वा एकमन्त निसीदि । एकमन्त निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्त एतदवोच,

सरुत्त वीमारी

(७४) वर्षाणामे भगवान्को कळी वीमारी उत्पन्न हुई । भारी मरणान्तक पीळा होने लगी । उमे भगवान्ने स्मृति-सप्रजन्यके साथ विना दु रा करते, स्वीकार (=सहन) किया । उस समय भगवान्को ऐसा हुआ—‘मेरे लिये यह उचित नहीं, कि मैं उपस्थानके (=सेवके) के बिना जतलाये, भिक्षु-सवके बिना अबलोकन किये, परिनिर्वाण प्राप्त करूँ । क्यों न मैं इस आबाधा (=व्याधि) को हटाकर, जीवन संस्कार (=प्राणशक्ति) को दृढतापूर्वक धारणकर, विहार करूँ । भगवान् उस व्याधिके वीर्य (=मनोबल) मे हटाकर प्राण शक्तिके दृढतापूर्वक धारणकर, विहार करने लगे । तत्र भगवान्को वह वीमारी शान्त हो गई ।

(७५) भगवान् वीमारीसे उठ, रोगसे अभी अभी मुक्त हो, विहारसे (बाहर) निकलकर विहारकी छायामें निछे आसनपर बैठे । तत्र आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

(७६) “दिट्टो मे भन्ते ! भगवतो फासु, दिट्ट मे भन्ते ! भगवतो स्वमनियं, अपि च मे भन्ते ! मधुरफजातोविय कायो, दिसा पि मे न परखायन्ति । घम्मा पि म नप्पट्टिभन्ति भगवतो गेलञ्जेन । अपि च मे भन्ते ! अहोसि काचिदेव अस्सास मत्ता न तार भगवा परिनिब्बायिस्सति । न याव भगवा भिक्खु संघ आरब्भ किञ्चिन्व उदाहरती, ति” ॥

(७७) किंपनानन्द ! भिक्खुसंघो मयि पचासिस्सति ? देसितो आनन्द ! मया धम्मो अनन्तर अवाहिर करित्वा, नत्यानन्द ! तथागतस्स धम्मेषु आचरिय मुट्ठि । यस्स नुन आनन्द ! एवमस्स अह भिक्खु-संघ परिहरिस्सामी, ति वा मग्गुहेसिको भिक्खु-संघो, ति वा तो नुन आनन्द ! भिक्खु संघ आरब्भ किञ्चिदत्र उदाहरेय्य । तथागतस्स खो आनन्द ! न एव हेति । “अह भिक्खु संघ परिहरिस्सामी, ति वा मग्गुहेसिको भिक्खु-संघो, ति वा” । स किं आनन्द ! तथागतो भिक्खु-संघ आरब्भ किञ्चिदेव उदाहरिस्सति ?

(७६) “भन्ते ! भगवान्को सुरती देया । भन्ते ! मेने भगवान्को अच्छा हुआ देया । भन्ते ! मेरा शरीर शून्य हो गया था । मुझे दिशायें भी सूफ न पळती था । भगवान्की बीमारीसे (मुझे) धर्म (=बात) भी नहीं भान हेते थे । भन्त ! कुछ आश्वासनमात्र रह गया था, कि भगवान् तत्रतर परिनिर्वाण नहीं प्राप्त करेंगे, जबतक भिक्खु-संघको कुछ कह न लेंगे ।”

(७७) “आनन्द ! भिक्खुसंघ मुझसे क्या चाहता है ? आनन्द ! मैंने न अन्दर न बाहर करके धर्म उपदेश कर दिये । आनन्द ! धर्मोंमें तथागतको (कोड) आया य मुट्ठि (= रहस्य) नहीं है । आनन्द ! जिसको ऐसा हो कि मैं भिक्खुसंघना धारण करता हूँ, भिक्खुसंघ मेरे उद्देश्यमें है, वह जरूर आनन्द ! भिक्खुसंघके लिये कुछ कहे । आनन्द ! तथागतको ऐसा नहीं है आनन्द ! तथागत भिक्खुसंघ के लिये क्या रहेंगे ? आनन्द ! मैं जीर्ण = इष्ट = महत्लक = अध्वगत = त्रय प्राप्त हूँ । अस्सी वषरी मेरा उम्र है । आनन्द ! जैसे पुरानी गाड़ी (= राकट) घोंघ-बूँधकर चलती है, ऐसा ही आनन्द ! मानों तथागतका

अह खो पनानन्द ! एतरहि जिण्णो बुद्धो महल्लुको अद्धगतो वयो अनुप्पत्तो । असीतिको मे वयो वत्तति । सेट्थयापि आनन्द ! जज्जर सक्क वेध मिस्सकेन यापेति, एवमेव खो आनन्द ! वेध मिस्सकेन मञ्जे तथागतस्स कायो यापेति । यस्मि आनन्द ! समये तथागतो सब्ब निमित्तान् अमनसिकारा एकच्चान वेदनान् निरोधा अनिमित्त चेतो समाधिं उपसम्पज्ज विहरति । फासुतरो आनन्द ! तस्मि समये तथागतस्स कायो होति । तस्मातिहानन्द ! अत्त-दीपा विहरथ अत्त-सरणा अनञ्ज-सरणा । धम्म-दीपा धम्म-सरणा अनञ्ज-सरणा ।

कथञ्चानन्द ! भिक्खु अत्त दीपो विहरति अत्त सरणो अनञ्ज-सरणो ? धम्म दीपो धम्म-सरणो अनञ्ज सरणो ?

इधानन्द ! भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेट्ठ्य लोके अभिञ्झा दोमनस्स वेदनासु चित्तेसु । धम्मसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेट्ठ्य लोके अभिञ्झा दोमनस्स । एव खो आनन्द ! भिक्खु अत्त-दीपो विहरति अत्त-सरणो अनञ्ज सरणो । येहि केचि आनन्द ! एतरहि वा मम वा अच्चयेन अत्त-दीपा विहरिस्सन्ति अत्त-सरणा अनञ्ज सरणा,

शरीर बाँध ठूँधर चल रहा है। आनन्द ! जिस समय तथागत मारे निमित्तो (=लिंगो) को मतमें न करनेसे, इन्हीं किन्हां वेदनाओंके निरुद्ध होनेसे, निमित्त रहित चित्तकी समाधि (=एकप्रता) को प्राप्त हो विहरते हैं, उस समय तथागतका शरीर अच्चा (=फासुत्त) होता है। इसलिये आनन्द ! आत्मदीप = आत्मशरण =

धम्मदीपा धम्म सरणा अनञ्ज-सरणा, तम तगगे मे ते आनन्द ! भिक्षु
भविस्सन्ति ये केचि सिक्खा-क्रामा, ति" ॥

दुतिय भाणवार ॥२॥

(७८) अथ खो भगवा पुब्बन्ह समय निवासेत्वा पत्त चीवरमाढाय
वेसालिं पिण्डाय पाविसि । वेसालिय पिण्डाय चरित्वा पच्छा भत्त
पिण्डपात पटिकन्तो आयस्मन्त आनन्द आमन्तेसि—'गण्हाहि आनन्द !
निसीदन । येन चापाल चेतिदं, तेनुपसङ्गमिस्साम दिवा विहा
राया, ति' ॥

(७९) 'एव भन्ते', ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा
निसीदन आदाय भगवन्त पिट्ठिता पिट्ठितो अनुबन्धि । अथ खो भगवा येन
चापाल चेतिय, तेनुपसङ्गमि । उपसङ्गमित्वा पञ्चत्ते आसने निसीदि ।
आयस्मा पि खो आनन्दो भगवन्त अभिवादेत्वा एकमन्त निसीदि ।

अनन्यशरण, धमदीप=धर्म-शरण=अनन्य-शरण हाजर विहरो । कैसे आनन्द ।
भिक्षु आत्मशरण ० हाजर विहरता है ? आनन्द । भिक्षु माया में कायानुपश्यो ०* ।"

(इति) द्वितीय भाणवार ॥२॥

(७८) तत्र भगवान् पूर्वाह्न समय पहनकर पात्र चीवर ले वैशालीमें भिक्षाके
लिये प्रस्थित हुए । वैशालीमें पिटवारकर, भोजनापरान्त आयुष्मान्
आनन्दसे बोले—

"आनन्द ! आसनी उठाओ, जहाँ चापाल-चैत्य है, वहाँ दिनकर विहारके
लिये चलेंगे ।"

(७९) "अच्छा भन्त ।"—कह आयुष्मान् आनन्द आमनी ले भगवान्‌के
पीछे पीछे चले । तत्र भगवान् जहाँ चापाल चैत्य था, वहाँ गये । जाकर भिक्षे
आसनपर बैठे । आयुष्मान् आनन्द भी अभिवादन कर । एक ओर बैठे

एकमन्त निसिन्न खो आयस्मन्त आनन्द भगवा एतदवांच,—“रम्मणीया आनन्द ! वेसाली, रम्मणोय उदेन चेतिय, रम्मणीय गोतमक चेतिय, रम्मणीय सत्तम्ब चेतिय, रम्मणीय बहुपुत्त चेतिय, रम्मणीय आनन्द चेतिय, रम्मणीय चापाल चेतिय” ॥

(८०) “यस्स कस्साचि आनन्द ! चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुली कता यानीकता वत्थुकता अनुद्धिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकह्मणो कप्प वा तिद्देय्य, कप्पावसेस वा । तथागतस्स खो पन आनन्द ! चत्तारो इद्धि पादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुद्धिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकह्मणो आनन्द ! तथागतो कप्प वा तिद्देय्य, कप्पावसेस वा ति” ॥

(८१) एव पि खो आयस्मा आनन्दो भगवता ओलारिके निमिच्च करियमाने, ओलारिके ओभासे करियमाने नासक्खि पटिविष्किटु । न भगवन्त याचि,—“तिट्ठतु भन्ते भगवा ! कप्प, तिट्ठतु सुगतो कप्प बहुजन हिताय बहुजन सुखाय लोकानुकम्पाय अत्याय हिताय सुखाय देव मनुस्सानन्ति” ॥ यथा त मारन परियुद्धित चित्तो ॥

आयुष्मान् आनन्दमे भगवान्ने यह कफा—आनन्द ! वैशाली रम्मणीय है, ०।० चापाल वैत्य रम्मणीय है ।

(८०) “आनन्द ! जिसने चार ऋद्धिपाद (= योगसिद्धियों) साथे हैं, वृद्धा लिये हैं, रास्ता कर लिये हैं, घर कर लिये हैं, अनुत्थित, परिचित और सुसमारब्ध कर लिये हैं, यदि वह चाहे तो कल्प भर ठहर सजता है, या कल्प के बचे (काल) तक ।— तथागतने भी आनन्द ! चार ऋद्धिपाद साथे हैं ०, यदि तथागत चाहें तो कल्प भर ठहर सजत हैं या कल्पके बचे (काल) तक ।”

(८१) ऐसे स्थूल सकेत करनेपर भी, स्थूलत प्रष्ट करनेपर आयुष्मान् आनन्द न समझ सके, और उहाने भगवान्ने न प्रार्थना की—“भन्ते ! भगवान् बहुजन हिताय बहुजन-सुगार्थ, लोकानुकम्पार्थ दय-मनुष्योंके अर्थ हित-सुखके लिये कल्प भर ठहरे”, क्योंकि मारने उनका मनका फेर दिया था ।

(८२) दुतियम्पि खा भगवा ० । ततियम्पि खो भगवा आयस्मन्तं
 आनन्द आपन्तसि—‘रम्मणीया आनन्द वेसाली, रम्मणीय उट्ठेन चेतिय,
 रम्मणीय गोतमक चेतिय, रम्मणीय सत्तम्भ चेतिय, रम्मणीय षड्ढुपुत्त
 चेतिय, रम्मणीय आनन्द चेतिय, रम्मणीय चापाल चेतिय’ ।” “यस्म
 कस्सचि आनन्द ! चत्तारो इद्धि-पादा भाविता बहुलीकता यानीकता
 उत्तुकता अनुद्धिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकह्ममानो कप्पं वा
 तिट्ठेय्य, कप्पावससे वा । तथागतस्स खो आनन्द ! चत्तारो इद्धि पादा
 भाविता बहुलीकता यानीकता वन्थुकता अनुद्धिता परिचिता सुसमारद्धा,
 सो आकह्ममानो आनन्द ! तथागता कप्प वा तिट्ठेय्य, कप्पावससे वा, ति ।”

एव पि खो आयस्मा आनन्दा भगवता आलारिके निमित्ते करिय-
 माने, ओलारिके आभासे करियमाने नासक्खि पटिविज्झित्तु । न
 भगवन्त याचि—‘तिट्ठतु भन्ते भगवा ! कप्प, तिट्ठतु सुगतो कप्प बहु-
 जन हिताय बहु जन सुखाय लोकानुकम्पाय अत्याय हिताय सुखाय
 दवमनुस्सानन्ति ॥” यथा त मारेण परियुद्धित चित्ता ।

(८३) अथ खो भगवा आयस्मन्त आनन्द आपन्तेसि,—‘गच्छ त्व
 आनन्द ! यस्म दानि काल मञ्जसी, ति’ ।

(८४) ‘एव भन्त’, ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा
 उट्ठायासना भगवन्त अभिवादेत्वा पदक्खिण्ण कत्वा अविदूर अञ्जतरस्मि
 रुक्ख मूले निसीदि ।

(८०) दूसरी बार भी भगवान्ने कहा—“आनन्द ! जित्तेन चार षड्द्विपाद० ।

तीसरी बार भी भगवान्ने कहा—“आनन्द ! जित्तेन चार षड्द्विपाद० ।

(८३) तत्र भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दो मयोचित किया—“जाओ,
 आनन्द ! जिसका काल समझत है ।”

(८४) “अच्छा, भन्त !”—कह आयुष्मान् आनन्द भगवान्को उत्तर
 आसनसे उठ भगवान्ने अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, न बहुत दूर एक वृक्षके नीचे बैठे ।

(८५) अथ खो मारो पापिमा अचिर पक्कन्ते आयस्मन्ते आनन्ते येन भगवा, तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा एकमन्तं श्रद्धासि । एकमन्तं ठितो खो मारो पापिमा भगवन्त एतदवोच,—“परिनिव्वातु दानि भन्ते ! भगवा परिनिव्वातु सुगतो !, परिनिव्वान फालो दानि भन्ते ! भगवतो । भासिता खो पनेसा भन्ते ! भगवता वाचा—‘न तावाह पापिम ! परिनिव्वायिस्सामि याव मे भिक्खू न सावका भविस्सन्ति वियत्ता विनिता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामिचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिणे सक् आचरियक् उग्गहेत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्चपेस्सन्ति पट्टपेस्मन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानि करिस्सन्ति, उप्पन्न परप्पवाद सहधम्मेन सुनिग्गहित निग्गहेत्वा सप्पाटिहारिय धम्म देसेस्सन्ती, ति ।’ एतरहि खो पन भन्ते ! भिक्खू भगवतो सावका वियत्ता विनिता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामिचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिणे सक् आचरियक् उग्गहेत्वा आचिक्खन्ति देसेन्ति पञ्चपेन्ति पट्टपेन्ति विवरन्ति विभजन्ति उत्तानि करोन्ति उप्पन्न परप्पवाद सहधम्मेन सुनिग्गहित निग्गहेत्वा सप्पाटिहारिय धम्म देसेन्ति ।”

“परिनिव्वातु दानि भन्ते ! भगवा, परिनिव्वातु सुगतो !, परिनिव्वान-फाला दानि भन्ते ! भगवतो । भासिता खो पनेसा भन्ते !

निर्वाणकी तैयारी

(८५) तब आयुष्मान् आनन्दके चले जानेके थोड़े ही समय बाद पापी (= दुष्ट) मार जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर एक ओर खड़ा हुआ । एक ओर खड़े पापी मारने भगवान्‌मे यह कहा—

“भन्ते ! भगवान् अब परिनिर्वाणको प्राप्त हों, सुगत परिनिर्वाणको प्राप्त हों । भन्ते ! यह भगवान्‌के परिनिर्वाणका काल है । भन्ते ! भगवान् यह बात कह चुके हैं—‘पापी ! मैं तबतक परिनिर्वाणको नहीं प्राप्त होऊँगा, जबतक मेरे भिक्षु आवक

भगवता वाचा,—‘न तावाहं पापिम ! परिनिव्वायिस्सामि याव मे भिवसुनियो न साविका भविस्सन्ति वियत्ता विनिता विमारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामिचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनियो सक आचरियक उग्गहेत्वा आचिविखस्सन्ति देसस्सन्ति पञ्चपेस्सन्ति पट्टपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानिं करिस्सन्ति उप्पन्न परप्पवाद् सहधम्मेन सुनिग्गहित निग्गहेत्वा सप्पाटिहारिय धम्मं देसेस्सन्ती, ति’ ॥ एतरहि खो पन भन्ते ! भिवसुनियो भगवता साविका वियत्ता विनिता विमारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामिचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनियो सकं आचरियक उग्गहेत्वा आचि करन्ति देसेन्ति पञ्चपेन्ति पट्टपेन्ति विवरन्ति विभजन्ति उत्तानिं करोत्ति, उप्पन्न परप्पवाद् सहधम्मेन सुनिग्गहित निग्गहेत्वा सप्पाटि हारिय धम्म देसेन्ति” ॥

“परिनिव्वातु दानि भन्ते ! भगवा, परिनिव्वातु सुगतो, परि निव्यान कालो दानि भन्ते ! भगवतो । भासितो खो पनेसा भन्ते ! भगवता वाचा,—‘न तावाह पापिम ! परिनिव्वायिस्सामि याव मे उपासका न साविका भविस्सन्ति वियत्ता विनिता विमारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामिचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनो सकं आचरियक उग्गहेत्वा आचिविखस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्चपेस्सन्ति पट्टपे स्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानिं करिस्सन्ति, उप्पन्न व्यक्त (= पडित), विनययुक्त, विशागद, बहुश्रुत, धर्म घर, धर्मानुसार धर्म मार्गपर आरूढ, ठीक मार्गपर आरूढ अनुधर्मचारी न हागे, अपने सिद्धान्त (= आचार्यक) को सीखनेर उपदेश, आख्यान, प्रज्ञापन (= मममाना), प्रतिष्ठापन, विवरण = विभजन, सरतीकरण न करने लगेंगे, दुमरेक बढाये आक्षेपके धर्मानुसार खंडन करके प्रातिहार्य (= युक्ति) के साथ धर्मका उपदेश न करने लगेंगे ।’ इस समय भन्ते ! भगवान्क भिक्षु आवक० प्रातिहार्यके साथ धर्मका उपदेश कर्ने हैं । भन्ते ! भगवान्

परप्पवाद् सहधम्मेन सुनिग्गहित निग्गहेत्वा सप्पाटिहारिय धम्म देसेस्सन्ती, ति ॥'

एतरहि खो पन भन्ते ! उपासका भगवतो सावका वियत्ता विनिता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामिचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनो सक् आचरियक् उग्गहेत्वा आचिक्खन्ति देसेन्ति पञ्चपेन्ति पट्टपेन्ति विवरन्ति विभजन्ति उत्तानिं करोन्ति, उप्पन्न परप्पवाद् सहधम्मेन सुनिग्गहित निग्गहेत्वा सप्पाटिहारिय धम्म देसेन्ति" ॥

परिनिब्बातु दानि भन्ते ! भगवा, परिनिब्बातु सुगतो ! परिनिब्बान कालो दानि भन्ते ! भगवतो । भासिता खो पनेसा भन्ते ! भगवतो वाचा,— 'न तावाह पापिम ! परिनिब्बायिस्मामि याव मे उपासिका न साविका भविस्सन्ति, वियत्ता विनिता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्म-प्पटिपन्ना सामिचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनियो सक् आचरियक् उग्गहेत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्चपेस्सन्ति पट्टपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानिं करिस्सन्ति, उप्पन्न परप्पवाद् सहधम्मेन सुनिग्गहित निग्गहेत्वा सप्पाटिहारिय धम्म देसेस्सन्ती, ति' ॥ एतरहि खो पन भन्ते ! उपासिका भगवतो साविका वियत्ता विनिता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामिचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारि-नियो सक् आचरियक् उग्गहेत्वा आचिक्खन्ति देसेन्ति पञ्चपेन्ति पट्टपेन्ति

अत्र परिनिर्वाणको प्राप्त हों ० । भन्ते ! भगवान् यह बात कह चुके हैं—'पापी । मैं तब तक परिनिर्वाणको नहीं प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरी भिक्षुणी श्राविकार्ये ० प्रातिहार्यके साथ धर्मका उपदेश न करने लगेंगी ।' इस समय ० । भन्ते ! भगवान् यह बात कह चुके हैं—'पापी । मैं तब तक परिनिर्वाणको नहीं प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरे उपासक श्रावक ० ।' इस समय ० । भन्ते ! भगवान् यह बात कह चुके हैं ।

त्रिवरन्ति विभजन्ति उच्चानि करान्ति, उप्पन्न पग्ग्ययादं महधम्ममेन मुनिग्गहित निग्गहेत्वा सप्पाट्टिहारिय धम्मं ऽमेन्ति ॥”

“परिनिव्यातु दानि भन्ते ! भगवा, परिनिव्यातु सुगतो ! परिनिव्यान-काला दानि भन्ते ! भगवतो मामिता खो पनेसा भन्ते ! भगवता वाचा,—‘न तावाह पापिप ! परिनिव्यायिस्सामि याव म इदं प्रह्लं परियं इदंश्चेव भविस्सति फित्तश्च वित्त्यारित बहु जण्य पुणुभूत याव देव मनुस्से हि सुप्पकासितन्ति” । एतरहि खो पन भन्ते ! भगवतो ब्रह्मचरिय इदंश्चेव फित्तश्च वित्त्यारित बहु जण्य पुणु भूत याव देव मनुस्से हि सुप्पकासित ।

परिनिव्यातु दानि भन्ते ! भगवा, परिनिव्यातु सुगतो ! परिनिव्यान कालो दानि भन्ते ! भगवता, ति ।’

(८६) एष बुध्ते भगवा मार पापिमन्त एतद्वोच,—“अप्पोसुको त्व पापिप ! होहि, न चिर तथागतस्स परिनिव्यान भविस्सति, इतो तिण्णं मासान अच्चयेन तथागतो परिनिव्यायिस्सती, ति ।’

(८७) अथ सो भगवा चापाल चेतिये सतो सम्पजानो आयु सद्धार ओस्सञ्जि, ओस्सट्ठे च भगवता आयुसद्धार महा भूमिचालो अहोसि

‘पापी ! मैं तब तक परिनिर्वाणको नहीं प्राप्त हाऊँगा, जब तक मेरो उपासिका आधिकार्ये ० ।’ इम समय ० । भक्त । भगवान् यह बात कह चुक हैं—‘पापी ! मैं तब तक परिनिर्वाणना नहीं प्राप्त हाऊँगा, जब तक कि यह नद्वचर्य (= बुद्धधर्म) खूद (= उन्नत) = स्वीत, विस्तारित, बहुजनगृहीत, विशाल, देवताआ और मनुष्या तक सुप्रकाशित न हो जायेगा ।’ इम समय भन्त । भगवान्का ब्रह्मचर्य ० ।’

(८६) ऐसा कहनेपर भगवान् न पापी मारसे यह कहा—‘पापी ! घेफिन्न हो, न चिर ही तथागतका परिनिर्वाण होगा । आजसे तीन मास बाद तथागत परिनिर्वाणको प्राप्त हाग ।’

(८७) तब भगवान्ने चापाल-सैत्यमें स्मृति-समज-यके साथ आयुसंस्कार (= प्राण-शक्ति) को द्रोठ दिया । जिस समय भगवान् आयु-संस्कार छोडा वम

मिसनको सलोमहसो । देव-दुद्रभियो च फलिसु । अथ खो भगवा एतमत्य विदित्वा ताय वेलाय इम उदानं उदानेसि—

(८८) तुल मतुलश्च सम्भव, भव-सङ्कार प्रवस्सजि मुनि ।

अश्रुत्त रतो समाहितो, अभिन्दिक वच भिवत्त सम्भवन्ति ॥

(८९) अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि,—अच्छरिय वत भो ! अद्भुत वत भो ॥ महावताय भूमिचालो सुमहावताय भूमिचालो मिसनको स-लोमहंसो । देव-दुद्रभियो च फलिसु । कोनु खो हेतु को पचयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाया, ति ! अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा, तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा भगवन्त अभिवादत्वा एकमन्त निसीदि । एकमन्त निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दा भगवन्त एतदवो च,—

(९०) “अच्छरिय भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! महावताय भन्ते ! भूमि-चालो । सु-महावताय भन्ते ! भूमिचालो मिसनको स लोमहसो ।

समय भीषण रोमांचकारी महान् भूचाल हुआ, देवदुन्दुभियों उर्जा । इस बातका जानकर भगवान् ने उसी समय यह उदान कहा—

(८८) “मुनिने अतुल तुल उत्पन्न भव-संस्कार (= जीवन-शक्ति) को छोड़ दिया ।

अपने भीतर रत और एकाग्रचित्त हो (उन्होंने) अपने साथ उत्पन्न कवचको तोड़ दिया ।”

(८९) तत्र आयुष्मान् आनन्दको ऐसा हुआ—“आश्चर्य है ! अद्भुत है ! । यह महान् भूचाल है । सु महान् भूचाल है । भीषण रोमांचकारी है । देव दुन्दुभियों धज रही हैं । (इस) महान् भूचालने प्राटुर्भावना क्या हेतु = क्या प्रत्यय है ?” तत्र आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये । जाकर भगवान् को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान् से यह कहा—

(९०) “आश्चर्य भन्त ! अद्भुत भन्ते । यह महान् भूचाल आया ० क्या हेतु = क्या प्रत्यय है ?”

देवदुद्रभियो च फलिसु कोनु खो भन्ते ! हेतु, को पचयो महतो भूमिचालस्स पातुभाराया, ति ?

अह खो इमे आनन्द ! हेतु, अह पचया महतो भूमिचालस्स पातु भावाय । कतमे अह ?

[१] अय आनन्द ! महापयत्री उदके पतिष्ठिता । उदकं वाते पति हित । वातो आकासहो होति । सा खो आनन्द ! समयो य महावाता वायन्ति । महावाता वायन्ता उदकं कम्पेन्ति । उदकं कम्पितं पथविं कम्पेति । अयं पठमो हेतु पठमो पचयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय ॥

[२] पुन च पर आनन्द ! समणो वा होंति ब्राह्मणो वा इद्धिमा चेतो वसिष्पत्तो देवो वा महद्धिको महानुभावो । तस्स परिता पथवी-सञ्जा भाविता होति । अण्णमाणा आपो-सञ्जा । सो इमं पथविं कम्पेति सकम्पेति सपकम्पेति सपवेधेति । अयं दुतियो हेतु दुतिया पचयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय ॥

[३] पुन च पर आनन्द ! यदा बोधिसत्तो तुस्सिता काया चवित्वा सतो सम्पज्जानो मातु कुच्चि ओकमति, तदा य पथवी कम्पति

“आनन्द ! महान् भूचालके प्रादुर्भावनक ये आठ हेतु = आठ प्रत्यय होते हैं । कौनसे आठ ? [१] आनन्द ! यह महापृथिवी जलपर प्रतिष्ठित है, जल वायुपर प्रतिष्ठित है, वायु आकाशम स्थित है । किसी समय आनन्द ! महावात (= तूफान) चलता है । महावातक चलनपर पानी कपित होता है । हिलता पानी पृथिवीको झुलाता है । आनन्द ! महाभूचालके प्रादुर्भावन यह प्रथम हेतु = प्रथम प्रत्यय है । [२] और फिर आनन्द ! कोई श्रमण या ब्राह्मण अद्धिमा चेतोवशित्व (= योगफल) को प्राप्त होता है, अथवा कोई दिव्यबलधारी = महानुभाव देवता होता है, उसने पृथिवी सक्षामी थोडोसा भावना की होती है, और जल सक्षामी बडी भावना । वह (अपने योगफलसे) पृथिवीको कपित = सनापित = सप्रकपित = संप्रोपित करता है । ० यह द्वितीय हेतु है । [३] ० जत्र बोधिसत्त्व तुपित देवलोकसे च्युत हो

सकम्पति सपकम्पति सपवेधति । अयं ततियो हेतु ततियो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय ॥

[४] पुन च पर आनन्द ! यदा गोधिसत्तो सतो सम्पजानो मातु कुच्छिस्सा निवखमति, तदा-य पयवी कम्पति सकम्पति सपकम्पति सपवेधति । अयं चतुत्थो हेतु चतुत्थो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय ॥

[५] पुन च पर आनन्द ! यदा तथागतो अनुत्तर सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुज्झति, तदा-य पयवी कम्पति सकम्पति सपकम्पति सपवेधति । अय पञ्चमो हेतु पञ्चमो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय ॥

[६] पुन च पर आनन्द ! यदा तथागतो अनुत्तर धम्मचक्र पवत्तेति, तदा य पयवी कम्पति सकम्पति सपकम्पति सपवेधति । अय षष्ठो हेतु षष्ठो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय ॥

[७] पुन च परं आनन्द ! यदा तथागतो सतो सम्पजानो आयु-सङ्खार ओस्सज्जति, तदा-य पयवी कम्पति संकम्पति सपकम्पति सपवेधति । अय सत्तमो हेतु सत्तमो पच्चयो महतो भूमिचालस्स पातुभावाय ॥

[८] पुन च पर आनन्द ! यदा तथागतो अनुपादिसेसाय निब्बान-धातुया परिनिब्बायति, तदा य पयवी कम्पति सकम्पति सपकम्पति

होश चेतके साथ माताको कोरुमें प्रविष्ट होते हैं । ० यह तृतीय ० । [४] ० जन गोधिसत्व होश चेतके साथ माताके गर्भसे बाहर आते हैं । ० यह चतुर्थ हेतु है । [५] ० जन तथागत अनुपम बुद्धज्ञान (=सम्यक् संज्ञोधि) का साक्षात्कार करते हैं । ० यह पंचम हेतु है । [६] ० जन तथागत अनुपम धर्मचक्र (=धर्मो-पदेश) को (प्रथम) प्रवृत्त करते हैं । ० यह षष्ठ हेतु है । [७] और आनन्द ! जन तथागत होश चेतके साथ जीवन-शक्तिको छोड़ते हैं । आनन्द ! यह महाभूचालके प्रादुर्भावका सप्तम हेतु = सप्तम प्रत्यय है । [८] और फिर आनन्द ! जन तथागत

सप्रेषति । अयं अहमो हेतु अट्ठमा पद्यो महतो भूमिचालस्स
पातुभावाय ॥

“इमे खो आनन्द ! अह हेतु, अह पद्यो, महतो भूमिचालस्म
पातुभावामा,ति” ॥

(९१) अह खो इमा आनन्द ! परिसा; कतमा अह ? [१] स्वत्तिय-
परिसा । [२] ब्राह्मण परिसा । [३] गृहपति परिसा । [४] समण
परिसा । [५] चातुमहाराजिक परिसा । [६] तावत्तिस-परिसा ।
[७] मार-परिसा । [८] ब्रह्म परिसा ॥

(९२) अभिजानामि खो पनाह आनन्द ! अनेक सत स्वत्तिय परिसं
उपसङ्गमित्वा, तत्र पि मया सन्निसिन्न पुब्बश्चेव सल्लपित पुब्बश्च
साकच्छा च समापञ्जित पुब्बा । तस्य यादिसको तसं वण्णो होति,
तादिसरो मय्ह वण्णो होति । यादिसको तसं सरो होति, तादिसको
मय्ह सरो होति । धम्मिया कयाय मन्दस्सेपि समादपेपि समुत्तेजेपि
संपहसमि । भासमानञ्च म न जानन्ति ‘कोनु खो अय भासति देवो
वा मनुस्सो वा, ति ।’ धम्मिया कयाय मन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्ते

सपूर्ण निर्वाणरो प्राप्त हाते हैं । ० यह अष्टम हेतु है । आनन्द । महा भूचालके
यह आठ हेतु - प्रत्यय हैं ।

(९१) “आनन्द । यह आठ (प्रकारकी) परिषद् (=सभा) होती हैं । कौनसी
आठ ? [१] क्षत्रिय परिषद्, [२] ब्राह्मण परिषद्, [३] गृहपति परिषद्, [४] श्रमण
परिषद्, [५] चातुमहाराजिक परिषद्, [६] त्रायस्त्रिंश परिषद्, [७] मार-परिषद् और
[८] ब्रह्म परिषद् ।

(९२) आनन्द । मुझे अपना सैरुल्लो क्षत्रिय परिषदोंमें जाना याद है ।
और वहाँ भी (मेरा) पहिले भाषण किये जैसा, पहिले आये जैसा साक्षात्कार
(होता है) । आनन्द । ऐसी कोई बात दृग्गनेरा कारण नहीं मिला, जिमसे कि

जेत्वा संपहसेत्वा अन्तरधायामि । अन्तरहितञ्च म न जानन्ति, 'कोनु खो अय अन्तरहितो देवो वा मनुस्सो वा ति' ॥

(९३) अभिजानामि खो पनाह आनन्द ! अनेक सत ब्राह्मण परिसं० । गृहपति-परिसं, सपणापरिसं, चातुमहाराजिक परिसं, तावत्तिस-परिसं, मार-परिसं, ब्रह्म-परिसं उपसङ्गमित्वा तत्र पि मया सन्निसिन्न पुब्बञ्चेव सल्लपित पुब्बञ्च साकच्छा च समापज्जित पुब्बा । तत्थ यादिसको तेस वएणो होति, तादिसको मय्ह वएणो होति । यादिसरो तेस सरो होति, तादिसको मय्ह सरो हेति । धम्मिया कथाय सदस्सेमि समादपेमि समुत्तेजेमि सपहसेमि । भासमानश्च म न जानन्ति, 'कोनु खो अयं भासति देवो वा मनुस्सो वा, ति ?' । धम्मिया कथाय सदस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सपहसेत्वा अन्तरधायामि । अन्तरहितश्च म न जानन्ति, 'कोनु खो अय अन्तरहितो देवो वा मनुस्सो वा, ति' । इमा खो आनन्द ! अट्ट परिसा ॥

(९४) अट्ट खो इमानि आनन्द ! अभिभायतनानि । कतमानि अट्ट ?

[१] अज्झत्त रूप सञ्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति परित्तानि सुवएण दुब्बएणानि । तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी,ति एव मञ्जी होति । इद पठम अभिभायतन ॥

मुझे वहाँ भय या घमगाहट हो । ज्ञेमरो प्राप्त हो, अभयरो प्राप्त हो, प्रशारकको प्राप्त हो, मैं विहार करता हूँ ।

(९३) आनन्द ! मुझे अपना मैत्र्य ब्राह्मण परिपदोंम जाना याद है ० । ० गृहपति परिपदोंमे ० । ० श्रमण परिपदोंमें ० । ० चातुर्माहाराजिक परिपदोंमे ० । ० त्रायस्त्रिंश परिपदोंमे ० । ० मार परिपदोंमे ० । ० ब्रह्मपरिपदोंमें ० ।

(९४) 'आनन्द ! यह आठ अभिभू आचतन (= एक प्रकारकी योग-त्रिया) हैं । कौनसे आठ ? [१] अपने भीतर अपेला रूपका ख्याल रखनेवाला होता है, और बाहर स्वल्प सुख या दुःख रूपोंको देखता है । 'उन्हे दनाकर (= अभिभूय)

[२] अञ्भक्त अरूप सञ्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति अप्प माणानि सुवण्ण दुब्बण्णानि । तानि अभिभूय्य जानामि पस्सामी,ति एव सञ्जी होति । इदं दुतियं अभिभायतनं ॥

[३] अञ्भक्त अरूप सञ्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति परित्तानि सुवण्ण दुब्बण्णानि । 'तानि अभिभूय्य जानामि पस्सामी',ति एव सञ्जी होति । इदं ततियं अभिभायतनं ॥

[४] अञ्भक्त अरूप सञ्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति अप्प माणानि सुवण्ण दुब्बण्णानि । 'तानि अभिभूय्य जानामि पस्सामी',ति एव सञ्जी होति । इदं चतुत्थं अभिभायतनं ॥

[५] अञ्भक्त अरूप-सञ्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति नीलानि नीलवण्णानि नीलनिदस्सनानि नील निभासानि ।—सेय्यथा पि नाम, उम्मा पुप्फं नील नील वण्ण नील निदस्सन नील निभास ।—सेय्यथा वा पन, त वत्थ चाराणसेय्यक उभतो भाग विमट्ठ नील नील वण्ण नील निदस्सन नील निभास । एवमेव अञ्भक्त अरूप सञ्जी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति नीलानि नीलवण्णानि नील निदस्सानि नील निभासानि ॥ 'तानि अभिभूय्य जानामि पस्सामीति', एव सञ्जी होति । इदं पञ्चमं अभिभायतनं ॥

जानूँ देखूँ—ऐसा ख्याल रखनेवाला होता है । यह प्रथम अभिभूय आयतन है ।

[२] अपने भीतर अकेला अरूपका ख्याल रखनेवाला होता है, और बाहर अपरिमित सुरण या दुवर्ण रूपाको देखता है । 'उहे देखाकर जानूँ देखूँ—ऐसा ख्याल रखनेवाला होता है । यह द्वितीय ० । [३] अपने भीतर अकेला अरूपका ख्याल रखनेवाला बाहर स्वल्प सुवण या दुवर्ण रूपोंको देखता है ० । [४]

अपने भीतर अरूपका ख्याल ० बाहर सुरण या दुवर्ण अपरिमित रूपोंका देखता है ० । [५] अपने भीतर अरूपका ख्याल ० बाहर नील, नीले जैसे, नीलवर्ण, नीलनिदर्शन, नीलनिभास रूपाको देखता है । जैसे कि अलसोका फूल नील =

[६] अङ्गुत्त अरूप-सञ्ची एको बहिद्धा रूपानि पस्सति पीतानि पीत वण्णानि पीत निदस्सनानि पीत निभासानि । सेय्यथा पि नाम— कणिकार पुप्फ पीत पीतवण्ण पीत निदस्सन पीत निमास । सेय्यथा वा पन, त वत्थ चाराणसेय्यक उभतो भाग विमट्ठ पीत पीत वण्णं पीत निदस्सन पीत निभास । एव मेव अङ्गुत्त अरूप-सञ्ची एको बहिद्धा रूपानि पस्सति पीतानि पीत वण्णानि पीत निदस्सनानि पीत निभासानि । 'तानि अभिञ्चय्य जानामि पस्सामी',ति एव सञ्ची हेति ॥ इदं छट्ठ अभिभायतन ॥

[७] अङ्गुत्त अरूप सञ्ची एको बहिद्धा रूपानि पस्सति लोहितकानि लोहितक वण्णानि लोहितक निदस्सनानि लोहितक निभासानि । सेय्यथा पि नाम,— बन्धुजीवक पुप्फ लोहितक लोहितक वण्ण लोहितक निदस्सन लोहितक निभास । सेय्यथा पि वा पन, त वत्थ चाराण-सेय्यक उभतो भाग विमट्ठं लोहितक लोहितक वण्ण लोहितक निदस्सन लोहितक निभास । एवमेव अङ्गुत्त अरूप-सञ्ची एको बहिद्धा रूपानि पस्सति लोहितकानि लोहितक वण्णानि लोहितक निदस्सनानि लोहितक निभासानि । 'तानि अभिञ्चय्य जानामि पस्सामी', ति, एव सञ्ची हेति । इदं सत्तम अभिभायतन ।

नीलवर्ण = नीलनिर्गर्शन = नीलनिभाम होता है, (वैसा) रूपको देखता है । जैसे लोनों ओरसे चिकना गोल० बनारसी वस्त्र हो, ऐसे ही अपने भीतर अरूप० ।
 [६] अपने भीतर अरूप०, बाहर पीत (=पील)० देखता है । जैसे कि कणिकारका फूल पीत०, जैसे कि दोनों ओरसे चिकना पीत० काशीका वस्त्र० ।
 [७] अपने भीतर अरूप०, बाहर लोहित (=लाल)० देखता है । जैसे कि बंधुजीवक, (=अँळट्टुल) का फूल लोहित०, जैसे कि० लाल० काशीका वस्त्र० ।

[८] अज्झत्त अरूप सञ्ची एको बहिद्धा रूपानि पस्सति ओदा तानि ओदात्त वण्णानि ओदात्त निदस्सनानि ओदात्त निभासानि । सेय्यथा पि नाम—ओसधितारका ओदात्ता ओदात्त वण्णा ओदात्त निदस्सना ओदात्त निभासा । सेय्यथा वा पन,—त वत्थ'वाराणसेय्यक उभतो भाग विमट्ठ ओदात्त ओदात्त वण्ण ओदात्त निदस्सन ओदात्त निभास । एवमेव अज्झत्त अरूप सञ्ची एको बहिद्धा रूपानि पस्सति ओदात्तानि ओदात्त वण्णानि ओदात्त निदम्मनानि ओदात्त निभासानि । 'तानि अभिमुत्थ जानामि पस्सामी', ति, एव सञ्ची होति । इट् अट्ठम अभिभायतन । इमानि खो आनन्द ! अट्ठ अभिभायतनानि । -

(९५) अथ खो इमे आनन्द ! “विमोक्खा ।” कतमे अट्ठ ?

[१] रूपी रूपानि पस्सति, अथ पठमो विमोक्खो ॥

[२] अज्झत्त अरूप सञ्ची बहिद्धा रूपानि पस्सति, अथ दुतियो विमोक्खो ॥

[३] सुभन्तेव अधिमुत्तो हेति, अथ ततियो विमोक्खो ।

[४] सन्वसेो रूप सञ्चान समतिकम्मा पटिष सञ्चान अत्थङ्ग मा नानत्त सञ्चान अ मनसिकारा अनन्तो आकासो, ति आकासेनश्चायतन उपसम्पज्ज विहरति, अथ चतुत्थो विमोक्खो ॥

[८] अपने भीतर अरूप ०, बाहर सफेद ० देखता है । जैसे कि शुनतारा सफेद ०, जैसे कि ० सफेद ० काशीका वस्त्र ० । आनन्द । यह आठ अभिभू आयता हैं ।

(९५) “और फिर आनन्द । यह आठ विमोक्ष हैं । कौनसे आठ ? [१] रूपी (= रूपजाल) रूपोंमें देखता है, यह प्रथम विमोक्ष है । [२] शरीरके भीतर अरूपका ख्याल रखनेवाला हो बाहर रूपाको देखता है ० । [३] सुभ (= शुभ) ही अधिमुक्त (= मुक्त) होते हैं ० । [४] सर्वथा रूपमें ख्यालमें अतिमग्न होकर, प्रतिदिमाके ख्यालके छुप होनेसे, नानापनके ख्यालमें मनमें न करनेसे 'आनाश

[५] सब्बसो आकासानञ्चायतन समतिकम्म अनन्तं विञ्चानन्ति विञ्चानञ्चायतन उपसम्पज्ज विहरति, अय पञ्चमा विमोक्खो ॥

[६] सब्बसो विञ्चानञ्चायतन समतिकम्म नत्थि किञ्ची' ति, आकिञ्चञ्चायतन उपसम्पज्ज विहरति, अय छट्ठो विमोक्खो ॥

[७] सब्बसो आकिञ्चञ्चायतन समतिकम्म नेवसञ्जा नासञ्जा यतन उपसम्पज्ज विहरति, अय सत्तमा विमोक्खो ॥

[८] सब्बसो नेवसञ्जा-नासञ्जायतन समतिकम्म सञ्जा वेदयित निरोध उपसम्पज्ज विहरति; अय अट्ठमो विमोक्खो । इमे खो आनन्द ! अट्ठ विमोक्खा ॥

(९६) एकमिदाह आनन्द !- समय उरुवैलाय विहरामि नञ्जा नेरञ्जराय तीर अजपाल निग्रोधे पठमाभिसम्बुद्धा । अय खो आनन्द ! मारो पापिमा येनाह, तेनुपसङ्गमि । उपसङ्गमित्वा एकमन्त अट्ठासि । एकमन्त ठितो खो आनन्द ! मारो पापिमा म एतद्वाच, “परिनिव्वातु दानि भन्ते ! भगवा, परिनिव्वातु सुगतो ! परिनिव्यान कालो दानि भन्ते ! भगवतो,ति॥”

अनन्त है—इस आकाश आनन्त्य आयतनको प्राप्त हो विहरता है० । [५] सर्वथा आकाश आनन्त्य आयतनको अतिक्रमण कर ‘विज्ञान (=चेतना) अनन्त है,—इस विज्ञान आनन्त्य आयतनको प्राप्त हो विहरता है० । [६] सर्वथा विज्ञान आनन्त्यको अतिक्रमण कर ‘कुछ नहीं है’—इस आकिञ्चन्य आयतनको प्राप्त हो विहरता है० । [७] सर्वथा आकिञ्चय आयतनको अतिक्रमण कर, नैवसञ्ज्ञानासञ्ज्ञा आयतन (=जिस समाधिक आभासका न चेतना ही कहा जा सके, न अचेतना ही) को प्राप्त हो विहरता है० । [८] सर्वथा नैवसञ्ज्ञानासञ्ज्ञा आयतनको अतिक्रमण कर प्रज्ञावेदिनिरोध (=प्रज्ञाको वेदनाका जहाँ निरोध हा) का प्राप्त हो विहरता है, यह आठमों विमोक्ख है ।

(९६) “एक बार आनन्द ! मैं प्रथम प्रथम बुद्धत्वको प्राप्त हा उरुवैलामें नेरञ्जरा नदीके तीर अजपाल बगदके नीचे विहार करता था । तब आनन्द ! दुष्ट (=पापी) मार जहाँ मैं था वहाँ आया । आकर एक ओर खड़ा हो गया । और बोला—‘भन्ते ! भगवान् अब परिनिर्वाणको प्राप्त हों, सुगत । परिनिर्वाणके प्राप्त हा ।’

(९७) एव धुचे अह आनन्द । मारं पापिमन्त एतदवोच,—“न तावाह पापिम । परिनिब्बायिस्सामि, याव मे भिक्खू न सासका भविस्सन्ति वियत्ता विनिता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मनुयम्मप्पटिपन्ना सामिच्चिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिणो सक्कं आचरियक उग्गहत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्चपेस्सन्ति पट्टपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानि करिस्सन्ति - उप्पन्न परप्पवाद सहधम्मेन सुनिग्गहित निग्गहेत्वा सप्पाटिहारिय धम्म देसेस्सन्ति ॥

(९८) न तावाह पापिम । परिनिब्बायिस्सामि, याव मे भिक्खुनियान सासिका भविस्सन्ति वियत्ता विनिता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मनुयम्मप्पटिपन्ना सामिच्चिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनियो मक आचरियक उग्गहत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्चपेस्सन्ति पट्टपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानि करिस्सन्ति उप्पन्न परप्पवाद सहधम्मेन सुनिग्गहित निग्गहेत्वा सप्पाटिहारिय धम्म देसेस्सन्ति ॥

(९९) न तावाह पापिम । परिनिब्बायिस्सामि, याव मे उपासका न

(९७) ऐसा कहने पर आनन्द । मने दुष्ट मारसे कहा - 'पापी । मैं तब तक परिनिर्वाणमो नहीं प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरे भिक्षु आनक निपुण (= व्यक्त), विनय युक्त, विशारद, बहुश्रुत, धर्मधर (= उपदेशाको कठस्थ रखनेवाले), धर्मके मार्गपर आरूढ़, ठीक मार्गपर आरूढ़, धर्मानुसार आचरण करनेवाले, अपने सिद्धान्त (= आचार्यके) को ठीकस पढ़कर न व्याख्यान करने लगे, न उपदेश करेंगे, न प्रज्ञापन करेंगे, न स्थापन करेंगे, न विवरण करेंगे, न विभाजन करेंगे, न स्पष्ट करेंगे, दूसरों द्वारा उठाये अपवादको धर्मके साथ अन्तरी नरह पकड़कर युक्ति (= प्रतिहार्य) के साथ धर्मका उपदेश न करेंगे ।

(९८) जब तक कि मेरा भिक्षुणा आविष्काय (= शिष्या) निपुण ० । ०

(९९) उपासक आनक ० । ०

सावका भविस्सन्ति वियत्ता विनिता विमारदा बहुस्सुता धम्मधरा
धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामिचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनो सक आचरियक
उग्गहेत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्चपेस्सन्ति पट्टपेस्सन्ति
विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानि करिस्सन्ति उप्पन्न परप्पवाद्
सहधम्मेन सुनिग्गहित निग्गहेत्वा सप्पाटिहारिय धम्म देसेस्सन्ति ॥

(१००) न तावाह पापिम ! परिनिव्वायिस्सामि, याव मे उपासिका
न साविका भविस्सन्ति वियत्ता विनिता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा
धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सामिचिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनियो सक
आचरियक उग्गहेत्वा आचिक्खिस्सन्ति देसेस्सन्ति पञ्चपेस्सन्ति
पट्टपेस्सन्ति विवरिस्सन्ति विभजिस्सन्ति उत्तानि करिस्सन्ति उप्पन्न
परप्पवाद् सहधम्मेन सुनिग्गहित निग्गहेत्वा सप्पाटिहारिय धम्म
दसेस्सन्ति ॥

(१०१) न तावाह पापिम ! परिनिव्वायिस्सामि, याव मे इद् ब्रह्म
चरिय न इद्धञ्चेव भविस्सति फितञ्च वित्थारित वाहु जञ्ज पुथु भूत
याव देव मनुस्सेहि सुप्पकासितन्ति ।

(१०२) इदानेव खो आनन्द ! अज्ज चापाले चेतिये मारो पापिमा
येनाह, तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा एकमन्त अट्ठासि । एकमन्त ठितो खो
आनन्द ! मारो पापिमा म एतदवोच,—“परिनिव्वातु भन्ते ! भगवा
परिनिव्वातु सुगतो ! परिनिव्यान-कालो दानि भन्ते ! भगवतो ।
भासिता खो पनेसा भन्ते ! भगवता वाचा,—“न तावाह पापिम !

(१००) उपासिका श्राविकायें ० ।

(१०१) जब तर यह ब्रह्मचर्य (= बुद्धधर्म) समृद्ध = वृद्धिगत, विस्तारको
प्राप्त, बहुजन-समानित, विशाल और देव-मनुष्यो तर सुप्रकाशित न हो जायगा ।

(१०२) आनन्द ! अभी आज इस चापाल-चैत्यमें मार पापी मेरे पास

भिक्षुनियो न साविका भविस्सन्ति० । याव मे उपासका न सावका भविस्सन्ति० । याव मे उपासिका न साविका भविस्सन्ति० । याव मे इदं ब्रह्मचरिय इद्दञ्चेव न भविस्सति फितञ्च वित्त्यारित वाहु जञ्च पुथु भूत याव देव मनुस्से हि सुप्पकासितन्ति ।” एतरहि खां भन्त ! भगवतो ब्रह्मचरिय इद्दञ्चेव फितञ्च वित्त्यारित वाहु जञ्च पुथु भूत याव देव मनुस्से हि सुप्पकासित । परिनिब्बानु दानि भन्ते ! भगवा, परिनिब्बानु मुगतो ॥ परिनिब्बान कालो दानि भन्ते ! भगवतो, ति ॥

(१०३) एव वुत्ते अह आनन्द ! मार पापिमन्त एतदवोच,— “अप्पो सुक्को त्व पापिम ! होहि । न चिर तथागतस्म परिनिब्बान भविस्सति । इता तिण्ण मासान अद्ययेन तथागतो परिनिब्बायिस्सती, ति ।” इदानि खा आनन्द ! अज्ज चापाले-चेतिये तथागतेन सतेन सम्पजानेन आयुसह्वारो ओस्सट्ठो, ति ॥

(१०४) एव वुत्ते आयस्मा आनन्दा भगवन्त एतदवोच,— “तिट्ठतु भन्ते ! भगवा कप्प, तिट्ठतु मुगतो ! कप्प बहुजन हिताय बहुजन-सुखाय लोकानुकम्पाय अत्याय हिताय सुखाय देव मनुस्सानन्ति ।

आया । आवर एक ओर गळा हो बोला—‘भन्त ! भगवान् अब परिनिर्वाणको प्राप्त हा ० ।

(१०३) ऐसा कहन पर मैं आनन्द ! पापी मारस यह कहा—‘पापी ! त्रिक्र हो, आजसे तीन मास बाद तथागत परिनिर्वाणको प्राप्त होंगे ।’ अभी आनन्द ! इस चापाल चेत्यमे तथागतन हारा चेतक साथ जीवन शक्तिको छोळ निया ।”

(१०४) ऐसा कहन पर आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा— ‘भन्त ! भगवान् बहुजन हितार्थ, बहुजन सुखार्थ, लोकानुकम्पार्थ, देव-मनुष्योंक अर्थ हित-सुख के लिये कल्प भर ठहरें ।’

(१०५) “अल दानि आनन्द ! मा तथागतं याचि ।
आनन्द ! तथागत याचनाया, ति” ॥

(१०६) दुतियम्पि खो आयस्मा आनन्दो० ।
आयस्मा आनन्दो भगवन्त एतदवोच,—“तिट्ठतु भन्ते !
तिट्ठतु सुगतो ! कप्प बहुजन हिताय बहुजन-सुखाय
अत्याय हिताय सुखाय दव मनुस्सानन्ति ।”

(१०७) सहसि त्व आनन्द ! तथागतस्स वाचिन्दि :

(१०८) ‘एव भन्ते ॥’

(१०९) अय किञ्च रहि त्व आनन्द ! तथागतं
अभिनिप्पिलेसी, ति ?

(११०) संमुखा मे त भन्ते ! भगवतो सुत
“यस्स कस्सचि आनन्द ! चत्तारो इट्ठिपादा
यानीकता वत्थुकता अनुट्ठिता परिचिता सुसमारद्धा
कप्प वा तिट्ठेय्य कप्पावसेस वा । तथागतस्स
इट्ठिपादा भाषिता बहुलीकता यानी कता
सुसमारद्धा । मो आफहुमानो आनन्द !
कप्पावसेसवा, ति” ॥

(१०५) “वन आनंद ! मत तथागतमे
प्रार्थना करेरा समय नहीं रहा ।”

(१०६) दूसरी पार भी आयुष्मार

(१०७) “आनंद ! तथागती बोधि

(१०८) “हाँ, भन्ते ।”

(१०९) “ता आनंद ! क्या ती पार

(११०) “भन्ते ! मैं यह भगवान्

रिया—“आनंद ! तिमने

(१११) महिमि त्व आनन्दा, ति ?

(११२) 'एव भन्ते !'

(११३) तस्मात्तिहानन्द ! तुय्येवेत दुष्टं तुय्येवेत अपरद्ध । यत् तयागतेन एव श्रौतारिके निमित्ते करियमाने, श्रौतारिके श्रोभासे करियमाने, ना सन्निव पटिविञ्चितु । न तयागत याचि—'तिहत्तु भन्ते ! भगवा कप्पं, तिहत्तु सुगतो ! कप्प वहुजन-हिताय बहुजन सुखाय लोकानु कम्पाय अत्याय हिताय सुखाय देव मनुम्मानन्ति ॥' सचे त्व आनन्द ! तयागत याचेग्यासि, द्वेवतं वाचा तयागतो पटिपवित्तपेय्य । अप ततियक अधिवासेय्य । तस्मात्तिहानन्द ! तुय्येवेत दुष्टं तुय्येव अपरद्ध ।

(११४) एकमिदाह आनन्द ! मय राजगहे विहरामि गिञ्जकूटं पव्यते । तत्रापि सो ताह आनन्द ! आमन्तेमि,—'रम्मणीय आनन्द ! राजगह, रम्मणीयो आनन्द ! गिञ्जकूटो पव्यतो, यम्म कस्सचि आनन्द ! चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता पत्थुकता अनुहिता परिचिता मुसमारद्धा । सो आकहुमानो कप्पवा तिह्वेष कप्पाव

(१११) "विश्वास कम ही आनन्द ।"

(११२) "हाँ, भन्ते ।"

(११३) "तो आनन्द ! यह तुम्हारा ही दुष्ट है तुम्हारा ही अपराध है, जो कि तयागतके वैसा उदार (= स्थूल) भाव प्रकट करने पर, उदार भाव दिखलानेपर भी तुम नहीं समझ मके । तुमने तयागतके नहीं याचना की—'भन्ते ! भगवान् कल्प भर ठहरें' । यदि आनन्द ! तुमने याचना की होती, तो तयागत दो हा बार तुम्हारी बातको अस्वीकृत करत तीमगी वार स्वीकार कर लेते । इसलिये, आनन्द ! यह तुम्हारा ही दुष्ट (= दुष्ट) है तुम्हारा ही अपराध है ।

(११४) "आनन्द ! एक वार में राजगृहके शृङ्गकूट पर्वत पर विहार करता था । वहाँ भी आनन्द ! मैंने तुमसे कहा—आनन्द ! राजगृह रम्मणीय है । शृङ्गकूट पर्वत रम्मणीय है । आनन्द ! जिसने चार ऋद्धिपाद साथे हैं ० । तयागतके

सेसवा ॥ तथागतस्स खो आनन्द ! चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुद्धिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आकह्वमानो आनन्द ! तथागतो कप्पवा तिद्देय्य कप्पावसेसवा, ति' । एव पि खो त्व आनन्द ! तथागतेन ओलारिके निमित्ते करियमान, ओलारिके औभासे करियमाने नासक्खि पटिविड्ढित्तु, न तथागत याचि,—'तिद्धतु भन्ते ! भगवा कप्प, तिद्धतु सुगता ! कप्प बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्याय हिताय सुखाय दव मनुस्सानन्ति' ॥ सचे त्व आनन्द ! तथागत याचेय्यासि, द्वेवते वाचा तथागतो पटिवक्खीपेय्य, अथ ततियक अधिवासेय्य, तस्मातिहानन्द ! तुय्हेवेतं दुक्कट तुय्हेवेत अपरद्ध ॥

(११५) एकमिदाहं आनन्द ! समय तत्थेव राजगहे विहरामि गोतम-निग्रोधे ० । तत्थेव राजगहे विहरामि चोर-पपाते ० । तत्थेव राजगहे विहरामि वैभार-पस्से सत्तपण्ण-गुहाय ० । तत्थेव राजगहे विहरामि इसिगिलिपस्से काल-सिलाय ० । तत्थेव राजगहे विहरामि सितवने सप्पसेण्डिक-पठभारे ० । तत्थेव राजगहे विहरामि तपोदारामे ० । तत्थेव राजगहे विहरामि वेत्तुवने-कलन्दक-निवापे ० । तत्थेव राजगहे विहरामि जीवकम्भवने ० ।

पैसा उदार भाव प्रकट करो पर ० भी तुम नहीं समझ सके ० । आनन्द ! यह तुम्हारा ही दुष्टत्व है, तुम्हारा ही अपराध है ।

(११५) "आनन्द ! एक धार में वही राजगृहमें गोतम न्यग्रोधमें विहार करता था ० । ० राजगृहमें चोरपपात पर ० । ० राजगृहमें वैभार पर्यतभी वगलमेकी सप्तपर्णी (=सत्तपण्णो) गुहामें ० । ० ऋषिगिरिकी वगलमें कालशिलापर ० । ० सितवनके सर्पशौटिक (=सप्पमोडिक) पहाळ (=पठभार) पर ० । ० तपोदाराममें ० । ० वेत्तुवनमें कलन्दक निवापमें ० । ० जीवकाम्रवनमें ० । ०

तथैव राजगहे विहरामि मद्भकुच्छिस्मि-मिगदाये ॥ तत्रापि खो
ताह आनन्द ! आमन्तेसि,—“रम्मणीय आनन्द ! राजगह, रम्मणीयो
गिष्मकूटो पञ्चतो, रम्मणीयो गोतम निग्रोधो, रम्मणीया चोर-पपातो,
रम्मणीया वैभार-पस्म मत्तपण्ण-गुहा, रम्मणीया उमिगिलि पस्म
काल सिला, रम्मणीयो सितवने सण्णसोण्हक-पञ्चारो, रम्मणीयो
तपोदारामो, रम्मणीयो वेलुवने कलन्दफ निवापो, रम्मणीय जीरकम्ब-
वने, रम्मणीयो मद्भकुच्छिस्म मिगदायो, यस्स कस्मचि आनन्द !
चचारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता घत्थुकता अनुद्धिता
परिचिता सुसमारुद्धा ०, सो आकद्दमानो आनन्द ! तथागतो कप्पवा
तिद्देय्य कप्पावसेसया, ति' ॥

“एव पि खो त्व आनन्द ! तथागतेन ओल्लारिके निमित्ते करिय
माने ओल्लारिके ओभासे करियमाने नासक्खि पटिविष्मिक्तु १” न
तथागत याचि—‘तिद्दतु भगवा ! कप्प, तिद्दतु सुगतो ! कप्प
बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्याय हिताय
सुखाय देव मनुस्सानन्ति’ । सचे त्व आनन्द ! तथागत याचेय्यासि,
द्वेवते चाचा तथागतो पटिवस्वीपेय्य, अथ ततियकं अधिवासेय्य ।
तस्मातिहानन्द ! तुय्हेपेत दुवत तुय्हेपेत अपरद्ध ।

(११६) एकमिदाह आनन्द ! समय इधेव वैसालिय विहरामि
उदने-चेतिये । तत्रापि खो ताह आनन्द ! आमन्तेसि,—‘रम्मणीया

मद्भकुच्छिस्मिगदायम विहार करता था । तहाँ भा आनन्द ! मैं तुमम रहा—
आनन्द ! रम्मणीय है राजगह । रम्मणीय है गोतम-ग्रामो ० । तुम्हारा ही
अपराध है ।

(११६) “आनन्द ! एक बार मैं इसी वैशालीक उद्यान-चैत्यमें विहार

आनन्द ! वसाली, रम्मणीय उदेन चेतिय यस्स कस्सचि आनन्द ! चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुद्धिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आरुह्ममनो कप्पवा तिद्धेय्य कप्पावसेसवा । तथागतस्स खो आनन्द ! चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुद्धिता परिचिता सुसमारद्धा, सो आरुह्ममनो आनन्द ! तथागतो कप्पवा तिद्धेय्य कप्पावसेसवा, ति' । एव पि खो त्व आनन्द ! तथागतेन ओलारिके निमित्ते करियमाने ओलारिके ओभासे करियमाने नासक्खि पटिविष्मिभात्तु । न तथागत याचि—'तिद्धतु भगवा ! कप्प, तिद्धतु सुगतो ! रूप्य बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्याय हिताय सुखाय देव मनुस्सानन्ति' । सचे त्व आनन्द ! तथागत याचेय्यासि, द्वेवते वाचा तथागतो पटिवखीपेय्य, अथ ततियक अधिवासेय्य । तस्मात्तिहानन्द ! तुय्हवेत दुकत तुय्हवेत अपरद्ध ।

एकमिदाह आनन्द ! समय इधेव वेसालिय विहरामि गोतमके चेतिये० । इधेव वेसालिय विहरामि सत्तम्बे-चेतिये० । इधेव वेसालिय विहरामि वहुपुत्ते-चेतिये० । इधेव वेसालिय विहरामि सानन्दरे चेतिये० । इदानेव खो ताह आनन्द ! अज्ज चापाले-चेतिये । आपन्तेसि—'रम्मणीया आनन्द ! वसाली, रम्मणीय उदेन-चेतिय, रम्मणीय गोतमक चेतिय, रम्मणीय सत्तम्ब-चेतिय, रम्मणीय बहुपुत्त-चेतिय, रम्मणीय सानन्दर चेतिय, रम्मणीय चापाल चेतिय । यस्स कस्सचि आनन्द ! चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुद्धिता परिचिता सुसमारद्धा; सो आरुह्ममनो कप्पवा करता वा ० । ० गोतमक चेत्य ० । ० सत्ताम्र (= सत्तम्ब) चेत्य ० । ० बहुपुत्रक चेत्य ० । ० सारन्दद-चेत्य ० । अभी आज मेने आनन्द । तुम्ह इम चापाल चेत्यमे कहा—आनन्द ! रम्मणीय है वैशातो ० । तुम्हारा ही अपराध है ।

तिद्वेय्य कृष्णावसेसवा ; तथागतस्स खो आनन्द ! चत्तारो इद्धिपादा भाविता बहुलीकता यानीकता वत्थुकता अनुद्धिता परिचिता सुसमारद्धा; सो आकङ्खमानो आनन्द ! तथागतो कप्पवा तिद्वेय्य कृष्णावसेसवा, ति' ।

एव पि खो त्थ आनन्द ! तथागतेन ओलारिके निमित्ते करियमाने, ओलारिके ओभासे करियमाने नासक्खि पटिविञ्जित्तु । न तथागत याचि—'तिद्वत्तु भगवा ! कप्प, तिद्वत्तु सुगतो ! कप्प बहुजनहिताय उहुजनसुखाय लोकानुरूपाय अत्थाय हिताय सुखाय देव मनु स्सानन्ति !!' सचे त्व आनन्द ! तथागत याचेय्यासि । द्वेव ते वाचा तथागतो पटिवक्खीपेय्य । अय ततियक अधिवासेय्य । तस्मातिहानन्द ! तुय्हेवेत दुक्कट तुय्हेवेत थपरद्ध ।

(११७) "ननु एत आनन्द ! मया पटिकुच्चेव अक्खात सन्वेहेव पियेहि मनापेहि नाना भावो विना-भावो अञ्जया भावो । त कुतेत्थ आनन्द ! लब्भा । यन्त जात भूत सङ्गत पलोकधम्म त वतमापलुञ्जी, ति । नेत ठान विञ्जति । य खो पनेत आनन्द ! तथागतेन चत्त वन्त मुत्त पहीन पटिनिस्सट्ठ ओस्सट्ठो आयुसङ्कारो । एकसेन वाचा तथागतं भासिता । न चिर तथागतस्स परिनिञ्चान भविस्सति । इतो तिण्ण मासान अच्चयेन तथागतो परिनिञ्चायिस्सती, ति" । तच्च तथागतो जीवितहेतु पुन पद्या गमिस्सती, ति नेत ठान विञ्जति ।

(११७) "आनन्द ! क्या मने पहिल ही नहा कह दिया—सभी प्रियों = मनापासे जुदाड वियाग = अन्यथाभावर हाता है । सो वह आनन्द ! वहाँ मिल सक्ता है, नि जो उत्पन्न = भूत = मरुत, नाशमान है, वह न नष्ट हो । यद्ग सभर नहीं । आनन्द ! जो यह तथागतने जीरा मस्का छोडा, त्यागा, प्रहीण = प्रतिनि मृष्ट किया, तथागतने विन्कुल पक्का बात कही है—जल्दी ही ० आजसे तीन माम वाद तथागतना परिनिर्वाण हागा । जीवनके लिए तथागत क्या कि वमन कियेको निगतोगे । य सभर नहीं ।

(११८) आयामानन्द ! येन महावन-कूटागार-साला, तेनुपसङ्क-
मिस्सामा, ति ।

‘एव भन्ते,’ ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि ।

(११९) अथ खो भगवा आयस्मता आनन्देन सद्धिं येन महावन
कूटागार साला, तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा आयस्पन्त आनन्द
आमन्तेसि—‘गच्छ त्व आनन्द ! यावतिका भिक्खू वेसालिं उपनिस्साय
विहरन्ति, ते सब्बे उपट्ठान-सालाय सन्निपातेही, ति’ ॥ ‘एव भन्ते,’ ति
खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा यावतिका भिक्खू वेसालिं
उपनिस्साय विहरन्ति, ते सब्बे उपट्ठान सालाय सन्निपातेत्वा येन
भगवा तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा भगवन्त अभिवादेत्वा एकमन्त
अट्ठासि । एकमन्त ठिता खो आयस्मा आनन्दो भगवन्त एतदपोच,—
“सन्निपतितो भन्ते ! भिक्खु संघो, यस्स दानि भन्ते ! भगवा काल
मञ्जसी, ति ॥”

(१२०) अथ खो भगवा येनुपट्ठान साला, तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा
पञ्चत्ते आसने निसीदि । निस्सञ्ज खा भगवा भिक्खू आमन्तेसि—
‘तस्मात्तिह भिक्खवे ! ये ते मया धम्मा अभिञ्जा देसिता । ते वा साधुक
उग्गहेत्वा आसेवितब्बा भावेत्तब्बा बहुलीकातब्बा । यययिद ब्रह्मचरिय
अद्दनिय अस्स चिर-द्वितिक । तदस्स बहुजनहिताय उहुजनसुखाय

(११८) “आओ आनन्द ! जहाँ महावन कूटागारशाला है, वहाँ चलो ।”

“अच्छा भन्ते ।” ० ।

(११९) भगवान् आयुष्मान् आनन्दके साथ जहाँ महावन कूटागार शाला थी,
वहाँ गये । जाकर आयुष्मान् आनन्दसे बोले—“आनन्द ! जाओ वैशालीय
पास जितने भिक्षु विहार करते हैं, उनको उपस्थानशातामें एकत्रित करो ।” ० ।

(१२०) तब भगवान् जहाँ उपस्थाशाला थी वहाँ गये । जाकर धि-
आमनपर बैठे । बैठकर भगवान् ने भिक्षुओंको आमत्रित किया—

लाभानुष्णाय अत्याय हिताय सुखाय देव मनुस्मान् । कतम च न
 भिक्वते । धम्मा मया अभिञ्जा देसिता ? ते यो साधुर् इगहेत्वा
 आसवित्तव्या भावेत्तव्या बहुलीकान्तव्या । यययिदं धातचरिय अद्वनिय
 अस्स चिरद्वितिकं । तदस्मं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानु-
 कम्पाय अत्याय हिताय सुखाय देव मनुस्मान् ? मेययिदं,—
 [१] चत्तारो मतिपट्टाना, [२] चत्तारो सम्मप्पधाना, [३]
 चत्तारो टट्टिपादा, [४] पच्चिन्टियानि, [५] पच्च वल्लानि,
 [६] सत्त घोड्ढका, [७] अरियो-अट्टङ्गिका-मग्गा । इमे यो
 भिक्वते । धम्मा मया अभिञ्जा देसिता । ते यो साधुर् इगहेत्वा
 आसवित्तव्या भावेत्तव्या बहुलीकान्तव्या । यययिदं धातचरिय अद्वनिय
 अस्स चिरद्वितिकं । तदस्मं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानु-
 कम्पाय अत्याय हिताय सुखाय देव मनुस्मान्ति ॥

(१०१) अयं गो भगवा भिक्वन्तु आपन्तेसि,—“हन्तं दानि
 भिक्वते । आमन्तयामि गो वयं धम्मा सहारा अत्पमादेन
 सम्पादेथ । न चिर तयागतस्स परिनिब्बानं भविससति । इता तिण्ण
 पासानं अचयेन तयागतो परिनिब्बायिस्सतो,ति ॥”

“इसलिए भिक्षुआ । मैं जो धर्म उपदेश किया है, तुम अन्धी तीरसे सोम
 पर उसका सेवन करता, भारना करना, यज्ञाणा, जिसमें कि यह यज्ञाय अध्याय =
 चिरस्थायी हो, यह (मनस्य) बहुजन हिताय, बहुजन सुखार्थ, लोकानुष्णार्थ
 देव-मनुष्याक अर्थ हित सुखक लिए हो । भिक्षुओ । मैं यह कौनसे धर्म, अभि-
 ज्ञानकर, उपदेश किये हैं, जिन्हें अन्धी तरह सोमरा = ? जैसे कि [१] चा-
 स्मृति प्रस्थान, [२] चार सम्यक-प्रमाण, [३] चार अद्विपाद, [४] पाँच इन्द्रिय
 [५] पाँच बल, [६] सत्त वाध्यंग, [७] आर्य अष्टांगिक मार्ग । ।

(१०१) “हन्तं । भिक्षुआ । तुम्हें कहता हूँ—सहारा (= बृजवस्तु), नाश
 होनाल (= वयधर्मा) हैं, प्रमादगन्धि ए (आदर्शना) सम्पादन करो । अचि-

(१२२) इदमवोच भगवा, इदं वत्त्वानं सुगतो अथापर
एतदवोच सत्या—

परिपक्को वयो मय्ह, परिच्छ मम जीवित ।
पहाय वो गमिस्सामि, कत मे सरणमत्तनो ॥
अप्पमत्ता सती मन्तो, सुसीला होथ भिक्खवो ! ।
सुसमाहितं सङ्कप्पा, स चित्तं मनुरक्खथ ॥
यो इमस्सिंमं धम्मं विनये, अप्पमत्तो विहस्सति ।
पहाय जातिं संसारं, दुक्खस्सन्तं करिस्सती, ति ॥

भाणवारं ततियं ॥ ३ ॥

(१२३) अथ खो भगवा पुब्बन्हं समयं निवासेत्वा पत्तं चीवर-
माटाय वेसालिं पिण्डाय पाविसि । वेसालियं पिण्डाय चरित्वा पच्छा
भत्तं पिण्डपातं पटिक्खन्तो नागावलोकितं वेसालिं अपलोकेत्वा आयस्मन्तं

कालमं ही तथागतसं परिनिर्वाणं होगा । आजमे तीणं मासं वादं तथागतं
परिनिर्वाणं पायेगे ।”

(१२०) भगवान्ने यह कहा । सुगत शास्तान यह कहकर फिर यह भी कहा—

“भगे आयु परिपक्व हो गया, मेरा जीवन थोड़ा है ।

“तुम्हें छोड़कर जाऊँगा मैंने अपने कर्म लायक (काम) को कर लिया ॥

भिक्षुओ ! निरालस, सावधान, सुशील होओ ।

सन्ध्या अच्छा तरह समाधान कर अपने चित्त की रक्षा करो ॥

जो इस धर्म में प्रमादरहित हो लगाव करेगा ,

यह आनागमानी छोड़ तुम्हें का अन्त करेगा ॥

(इति) तृतीय भाणवार ॥३॥

कुसीनारा की ओर—

(१२३) तत्र भगवान् पूर्वाह्नं समयं पठित्वा पात्रं चोत्तरं ले वैशालामे
पिण्डधारं कर, भोजनापरांतं नागावलोकितं (=पार्थिवीं तरह सारे शरीर का धमाकर

आनन्द आपन्तेसि,—‘इदं पच्छिदमकं आनन्द ? तथागतस्स वेसालिया दस्मन भविस्सति ।’ आयामानन्द ! येन भण्डुगामो, तेनुपमङ्ग मिससाया,ति ॥ ‘एव भन्वे’,ति खो आयस्सा आनन्दो भगवतो पच्चस्तेसि ॥

(१२४) अथ खो भगवा महता भिक्षु संघेन सद्धिं येन भण्डुगामो, तद्वसति । तत्र सुदं भगवा भण्डुगामे विहरति । तत्र खो भगवा भिक्षु आपन्तेसि,—‘चतुन्न भिक्षव्वे ! धम्मपान अननुवोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धान सन्धावित संसरित ममञ्चेव तुम्हाकञ्च । कतमे सं चतुन्न ?

(१२५) [१]—अरियस्स भिक्षव्वे ! सीलस्स अननुवोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धान सन्धावित संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च ॥

[२]—अरियस्स भिक्षव्वे ! समाधिस्स अननुवोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धान सन्धावित संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च ॥

[३]—अरियाय भिक्षव्वे ! पञ्जाय अननुवोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धान सन्धावित संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च ॥

[४]—अरियाय भिक्षव्वे ! त्रिमुत्तिया अननुवोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धान सन्धावित संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च ॥

देवता) से वैशालीका दरकर, आयुष्मान् आनन्दसे कहा—‘आनन्द ! तथागतस्य यह अन्तिम वशाली-दर्शनं हागा । आशु आनन्द ! जहाँ भण्डुगाम है, वहाँ चलो ।’ “अन्त्रा मन्त ।”

भण्डुगाम—

(१२४) तत्र भगवान् महाभिक्षु संघस्य साथ जहाँ भण्डुगाम था, वहाँ पध्च । वहाँ भगवान् भण्डुगाम विहार करते थे ।

भिक्षुओ ! चार धर्मा का अरवाध न होनेसे प्रतिवेध न होनेसे ही इस प्रकार दीघकाल तक मेरा और तुम्हारा पैदा होना तथा मरना चलता रहा । कौनसे चार ?

(१२५) [१] भिक्षुओ ! आर्यशीला का ज्ञान न होनेसे, प्रतिवेध न होनेसे । [२] भिक्षुओ ! आर्य समाधिना । [३] भिक्षुओ ! आर्य प्रज्ञान । [४] भिक्षुओ ! आर्य त्रिमुक्तिना ।

(१२६) तयिद भिक्खवे ! अरिय सील अनुबुद्ध पटिविद्ध । अरियो समाधि अनुबोधो पटिविद्धो । अरिया पञ्चा अनुबुद्धा पटिविद्धा । अरिया विमुत्ति अनुबुद्धा पटिविद्धा । उच्छिन्ना भव—तएहा, खीणा भव नेत्ति, नत्थि दानि पुनब्भवोति । इदमवोच भगवा, इद वत्तान सुगतो, अथापर एतदवोच सत्था :—

(१२७) सील समाधि पञ्चा च, विमुत्ति च अनुत्तरा ।
अनुबुद्धा इमे धम्मा, गोतमेण यसस्सिना ॥
इति बुद्धो अभिञ्जाय, धम्ममक्खासि भिक्खुण ।
दुक्खस्सन्त करो मत्था, चक्खुमा परिनिब्बुतो, ति ॥

(१२८) तत्रा पि सुद भगवा भएडुगामे विहरन्तो एतदेव बहुल भिक्खुण धम्मि-कथ करोति । 'इति सील, इति समाधि, इति पञ्चा, सील परिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिससो० । पञ्चा परिभावित चित्त सम्पन्नेव आसवे हि विमुच्चति । सेय्ययिद,—कामासवा भवासवा अविञ्जासवा, ति ।

(१२६) भिक्षुओ । उस आर्य-शीलका ज्ञान हुआ, प्रतिबेध हुआ । उस आर्य समाधिकार० । उस आर्य प्रज्ञाका० । उस आर्य विमुक्तिका० । भय वृष्णा नष्ट हो गई । भव नेता जाता रहा । अब पुनर्जन्म नहीं होगा । भगवान् ने यह कहा, और यह कहकर आगे भगवान् ने यह कहा—

(१२७) यशस्वी गौतमने शील, समाधि, प्रज्ञा तथा सर्वश्रेष्ठ विमुक्ति का प्रतिबेध प्राप्त किया ॥

बुद्धने इसे जानकर भिक्षुओंको धर्मका उपदेश किया । दुःखका अन्त करनेवाले शास्ता, बहुतमान् शास्त हो गये ॥

(१२८) वहाँ भँडुगामे विहार करत भी भगवान्० ।

(१२९) अथ खो भगवा मण्डुगामे यथाभिरन्त विहरित्वा श्रायस्मन्त
आनन्द आमन्तेमि,—‘आयामानन्द ! येन हृत्थिगामो, येन अम्ब-
गामो, येन जम्बुगामो, येन भोगनगरे, तेनुपसङ्गमिस्मामा, ति’ ।
‘एव भन्त’, ति खो श्रायस्मा आनन्दो भगवतो पञ्चस्तोमि । अथ
खो भगवा महता भिवसु-सणेन मद्धि येन भोगनगर, तद्वमरि ।

(१३०) तत्र सुदं भगवा भोगनगरे विहरति सानन्दरे-चेनिये ।
तत्र खो भगवा भिवसु आमन्तेसि—‘वत्तारो मे भिवखरे ! महापटेसे
दसिस्सामि । तं सुणाप, साधुफं मनसि करोप, भामिस्सामी, ति’ ।
‘एव भन्ते’ ति खो ते भिवसु भगवतो पञ्चस्तोसु ।

(१३१) भगवा पत्तदवान्—

[१] इध भिवखरे ! भिवसु एव वटेय्य—‘संमुखा मे त आवुसो !
भगवतो सुत समुखा पटिग्गहित, अथ धम्मो, अथ विनयो, इद सत्थु
सासनन्ति’, तस्स भिवखवे ! भिवसुनो भासित नेव अभिनन्दितव्य,

(१०५) ० जहाँ अम्बगाम (- आम्बगाम) ० । ० जहाँ जम्बुगाम (= जम्बु
गाम) ० । ० जहाँ भोगनगर ० ।

भोगनगर—

(७) महाप्रदेश (कसौटी)

(१२०) वहाँ भोगनगरमें भगवान् सानन्दर चैत्यम विहार करते थे । वहाँ
भगवान्ने भिक्षुश्रोका आमंत्रित किया—“भिक्षुश्रो ! चार महाप्रदेश तुम्हें उपदेश
करता है, यह सुना, अच्छी तरह मान करे, भाषण करता है ।” “अच्छा भन्त !”
यह उा भिक्षुआन भगवान्को उत्तर दिया ।

(१२१) भगवान्ने यह कहा—[१] “भिक्षुआ ! यदि (वार्डे) भिक्षु ऐसा
करे—आवुसो ! मैंने इसे भगवान्क मुग्घसे सुना, मुग्घसे प्रहण किया है, यह धर्म
है, यह विनय है, यह शास्ताका उपदेश है,— तो भिक्षुआ ! उस दिन भिक्षुके
भाषणका न अभिनन्दन करना, न निन्दा करना । अभिनन्दन न कर, निन्दा न
कर, उा पद-व्यंजनाके अच्छी तरह सीखकर, सूत्रमे तुलना करेगा, विनयमे लेगा ।

नप्पट्ठिक्कोसित्तव्व । अनभिनन्दित्वा अप्पट्ठिक्कोमित्वा तानि पदव्यञ्जनानि साधुक उग्गहेत्वा सुत्ते ओसारेतब्धानि, विनये सन्दस्सेतब्धानि । तानि चे सुत्ते ओसरियमानानि विनये सन्दस्सियमानानि, न चेव सुत्ते ओसरन्ति, न च विनये सन्दिस्सन्ति; निट्ठमेत्थ गन्तव्व, “अद्धा इदं न चेव तस्स भगवतो वचनं, इमस्स च भिक्खुना दुग्गहितन्ति ।” इति इत्तं भिक्खवे ! छट्ठेय्याय । तानि च सुत्ते आसारियमानानि, विनये सन्दस्सियमानानि, सुत्ते चेव ओसरन्ति, विनये च सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तव्व । “अद्धा इदं तस्स भगवतो वचनं, इमस्स च भिक्खुना सुग्गहितन्ति” । इदं भिक्खवे ! पथमं महापदेशं धारय्याय ।

[२]—इध पण भिक्खवे ! भिक्खु एव वदेत्थ—‘अमुकस्सिं नाम आवासे सघो विहरति सधेरो सपामोक्खा । तस्स मे सधस्स समुखा सुत्तं, समुखा पट्ठिगहितं, अयं धम्मो, अयं विनयो, इदं सत्थु सासनन्ति’ । तस्स भिक्खवे ! भिक्खुनो भासितं नेव अभिनन्दितव्व, नप्पट्ठिक्कोसित्तव्व । अनभिनन्दित्वा, अप्पट्ठिक्कोमित्वा, तानि पदव्यञ्जनानि साधुक उग्गहेत्वा सुत्ते ओसारेतब्धानि, विनये सन्दस्सेतब्धानि, तानि चेव सुत्ते आमारियमानानि, विनये सन्दस्सियमानानि, न चेव सुत्ते ओसरन्ति, न च विनये सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तव्व । “अद्धा इदं न चेव तस्स भगवतो

यदि वह सूत्रस तुलना करनेपर, विनयमे देखनेपर, न सूत्रमें उतरत हैं, न विनयमें दिग्गार्ह देते हैं, तो विश्वास करना कि अत्रय वह भगवान्का वचन नहा है, इस भिक्खुका ही दुर्गृहीत है । ऐसा (हानेपर) भिक्खुआ । उसको छोड़ना । यदि वह सूत्रसे तुलना करनेपर, विनयमें दर्शनेपर, सूत्रमें भी उतरता है, विनयम भी दिग्गार्ह देता है, तो विश्वास करना—अवश्य यह भगवान्का वचन है इस भिक्खुका यह सुगृहीत है भिक्खुओ । इसे प्रथम महापदेश धारण करना ।

“[२] और फिर भिक्खुआ । यदि (कोई) भिक्खु ऐसा कह—आवुसे । अमुक आवास में स्वविर युक्त प्रमुख-युक्त (भिक्खु)-मय विहार करता है । मैंने उस

वचन, तस्स च संघस्स दुग्गहितन्ति ।” इति हेत भिक्खवे ! छद्देय्याय । तानि चे सुत्ते ओसारियमानानि, विनये सन्दिस्सयमानानि, सुत्ते चेव ओसरन्ति, विनये च सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्ब, “अद्धा इद तस्स भगवतो वचन, तस्स च सघस्स सुग्गहितन्ति” । इद भिक्खवे ! दुतिय महापदेसं धारेय्याय ।

[३]—इध पन भिक्खवे ! भिक्खु एव वदेय्य—‘अमुकस्मि नाम आवासे सम्पहुत्ता थेरा भिक्खू विहरन्ति बहुस्सुत्ता आगतागमा धम्मधरा विनयधरा मातिकाधरा । तेसं मे थेरान संमुखा सुत्त, संमुखा पटिगहित । अय धम्मो, अय विनयो, इद सत्थु सासनन्ति’ । तस्स भिक्खवे ! भिक्खुने भासित नव अभिनन्दितब्ब० । न च विनये सन्दिस्सन्ति । निट्ठमेत्थ गन्तब्ब, “अद्धा इद न चेव तस्स भगवतो वचन, तेसञ्च थेरान दुग्गहितन्ति ।” इति हेत भिक्खवे ! छद्देय्याय । तानि चे सुत्ते ओसारियमानानि० । विनये चे सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्ब, “अद्धा इद तस्स भगवतो वचन, तेसञ्च थेरान सुग्गहितन्ति ।” इद भिक्खवे ! ततिय महापदेसं धारेय्याय ॥

[४]—इध पन भिक्खवे ! भिक्खु एव वदेय्य—‘अमुकस्मि नाम आवासे एको थेरा भिक्खु विहरति बहुस्सुतो आगतागमो धम्मधरो

सक मुत्तसे सुत्ता, मुत्तसे प्रहण किया है— यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शामन है । ० । तो विश्वास करना, कि अवश्य उन भगवान्का वचन है, इसे सधने सुगृहीत किया । भिक्षुओ ! यह दूसरा महाप्रदेश धारण करना ।

“[३] ० भिक्षु ऐसा कह—‘आवुत्तो । अमुक आवासमे उहुत्तसे बहुश्रुत, आगत आगम—(— आगमज्ञ), धर्म धर, विनय धर, मात्रिका धर, स्थविर भिक्षु विहार करते हैं । यह मैंने उन स्थविरों क मुत्तसे सुत्ता, मुत्तसे प्रहण किया । यह धम है । ० । ० ।

“[४] भिक्षुओ ! (यदि) भिक्षु ऐसा वहे—अमुक आवासमे एक बहुश्रुत ०

विनयधरो मातिकाधरो तस्स मे थेरस्स संमुखा सुत्त, संमुखा पटिग्गहित
 अय धम्मो, अयं विनयो, इद सत्थु सासनन्ति ।' तस्स भिक्खवे !
 भिक्खुणो भासित नेव अभिनन्दितब्ब, नप्पटिकोसितब्ब । अनभिन
 न्दित्वा अप्पटिकोसित्वा, तानि पद व्यञ्जनानि साधुक उग्गहेत्वा सुत्ते
 ओसारतब्बानि विनये सन्दस्सेतब्बानि । तानि चे सुत्ते ओसारियमानानि,
 विनये सन्दस्सियमानानि, न चेव सुत्ते ओसरन्ति, न च विनये सन्दिस्स
 न्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्ब, "अद्धा इद न चेव तस्स भगवतो वचन, तस्स
 च थेरस्स दुग्गहितन्ति" । इति हेत भिक्खवे ! छङ्गेय्याथ । तानि चे
 सुत्ते ओसारियमानानि विनये सन्दस्सियमानानि, सुत्ते चेव ओसरन्ति
 विनये च सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्ब, "अद्धा इद तस्स भगवतो
 वचन, तस्स च थेरस्स सुग्गहितन्ति" । इद भिक्खवे ! चतुत्थ महा-
 पदेसे धारय्याथ । इमे खो भिक्खवे ! चत्तारो महापदेसे धारेय्याथा, ति ॥

(१३२) तत्र पि सुद भगवा भोगनगरे विहरन्ते सानन्दरे-चेतिये
 एतदेव बहुल भिक्खून धम्मि-कथ करोति, 'इति सील, इति समाधि, इति
 पब्बा, सील परिभाविता समाधि महप्फलो होति महानिसंसे । समाधि
 परिभाविता पब्बा महप्फला होति महानिसंसा । पब्बा परिभावित
 चित्त सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति;—सेग्गयिद,— कामासवा, भवासवा,
 अविज्जासवा, ति' ॥

स्वयं भिक्षु विहार करता है । यह मैं उस स्वयंभू मुन्यसे सुता है, सुखसे महान
 किया है । यह धर्म है, यह विनय ० । भिक्षुणा । इस शत्रुयं महामरश धारण करना ।

भिक्षुओ । इन चार महापदेशाना धारण करता ।"

(१३२) यहाँ भागानगरमें विहार करता समय भी भगवान् भिक्षुआपों बहुत
 करके यही धर्म पढ़ा पाता था ० ।

(१३८) अथ खो भगवा चुन्दं कम्मर-पुत्त आमन्तेसि—'यन्त चुन्द ! सुकर-मदव अयसिद्ध, तं सोन्धे निखण्णादि । नाह त चुन्द ! पस्सापि स देवके लोके स-भारके स द्दसने स-स्तमण द्वाद्धणिया पजाय स-दव मनुस्साय, यस्स त परिभुत्त सम्मा परिणाम गच्छेय्य शब्बत्र तथागतस्सा, ति' ।

(१३९) 'एव भन्ते', ति खो चुन्दा कम्मर पुत्तो भगवता पटिस्सुत्वा य अहासि सुकर-मदव अयसिद्ध, त सोन्धे निखण्णत्वा येन भगवा, तेनुपसङ्गमि । उपसङ्गमित्वा भगवन्त अभिवात्त्वा एकमन्त निसीदि । एकमन्त निसिद्ध खो चुन्द कम्मर पुत्त भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सपहसेत्वा उट्ठायासना पक्कमि ।

(१४०) अथ खो भगवतो चुन्दस्म कम्मर-पुत्तस्स भत्त भुत्ताविस्स खरो आवाधो उप्पज्जि । लाहित पक्खन्दिका पचाद्धा वेदना वत्तन्ति भाग्णन्तिका । ता सुद भगवा सतो सम्पजानो अधिवासमि अविहञ्जमाना ।

(१३८) तब भगवान्ने चुन्द कर्मार पुत्रो आमन्त्रित किया,—चुन्द ! जो शकर मन्त्रेव बच गया है, उसको गड्ढा खोदकर गाढ दे । चुन्द ! देव, भार, त्रधा सक्ति लोभमें और श्रमण नाहाण और देवता मनुष्य सहित इस प्रजामें तथा गतका छोड़ कर और कोई नहीं दिग्गई नेता, जो इस (भोजन) को पचा मरगा ।

(१३९) "अच्छा भन्ते ।" । एक आर बैठे चुन्द कर्मार पुत्रो भगवान् धामिक कपास ० समुत्तेजित ० कर आमा में उठकर चला दिये ।

(१४०) तब चुन्द कर्मार पुत्रके भात (= भोजन) को खाकर भगवान्को खून गिरनरी, कब्जी रामारी उत्पन्न हुई, माग्णान्तर मरत पीडा होने लगी । उसे भगवान्ने स्मृति-संप्रजन्ययुक्त हो, बिना दुःखित हुए, सहन किया । तब भगवान्ने आयुष्मान् आन्दको सवाधित किया—

(१४१) अथ खो भगवा आयस्मन्त आनन्द आमन्तेसि—‘आया-
मानन्द ! येन कुसिनारा, तेनुपसङ्गमिस्सामा, ति’ । ‘एव भन्ते’ ति
खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पचस्सोसि ।

(१४२) जुन्दस्स भत्त भुञ्जित्वा, कम्मरस्साति मे सुत ।
आवाध सङ्गसि धीरो, पवाल्लह पारणन्तिकं ॥
भुत्तस्स च सूकर-मद्दवेन, व्याधि पवाल्लहो उदपादि सत्थुनो ।
विरेचमानो भगवा अत्रोच, गच्छामह कुसिनार नगरन्ति ॥

(१४३) अथ खो भगवा मग्गा ओक्कम्म येन अञ्जत्र रुक्खमूल, तेनुप-
सङ्गमि । उपसङ्गमित्वा आयस्मन्त आन द आमन्तेसि—‘इह मे त्व आनन्द !
चतुगुण सपाटिं पञ्चपेहि । किलन्तोस्मि आनन्द ! निसीदिस्सामी, ति’ ।

(१४४) ‘एवं भन्ते’ ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा
चतुगुण सपाटिं पञ्चपेसि । निसीदि भगवा पञ्चत्ते आसने । निसञ्ज
खो भगवा आयस्मन्त आनन्द आमन्तेसि—‘इह मे त्व आनन्द !
पानिय आहर, पिपासितोस्मि आनन्द ! पिबिस्सामी, ति’ ।

(१४१) ० “आओ आन द । जहाँ कुसीनारा है, वहाँ चलो ।”
“अच्छा भन्ते ।”

(१४२) मैं सुना है—जुन्द कर्माके भातके भोजनकर,
धीरके मरणातक भारी राग हो गया ।

सूकर-मर्दाके खानेपर शास्ताके भारी रोग उत्पन्न हुआ ।

विरेचनेके होते समय ही भगवान्ने कहा—चलो, कुसीनारा चलो ॥

(१४३) तब भगवान् मार्गसे हटकर एक वृक्षके नीचे गये । जाकर आयु
ष्मान् आनन्दसे कहा—

“आनन्द ! मेरे तिये चौपेती सजाटी विद्या दे, मैं थक गया हूँ, बैठूँगा ।

(१४४) “अच्छा भन्ते ।” आयुष्मान् आनन्दने चौपेती सजाटी विद्या दी,
भगवान् विद्वे आमनपर बैठे । बैठकर भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—
“आनन्द ! मेरे तिये पानी लाओ । प्यासा हूँ, आनन्द ! पानी पिऊँगा ।”

(१४५) एवं वृत्ते आयस्मा आनन्दो भगवन्त एतदवोच—‘इदानी भन्ते ! पञ्चमत्तानि सकट सतानि अतिक्रन्तानि त चकच्चिन्न उदक परिच लुलित आविल सन्दति । अथ भन्ते ! ककुधा नदी अविदूरे अञ्चोदका सातोदका सीतोदका सेतोदका सुप्पतित्या रम्मणीया । एत्थ भगवा पानियञ्च पिविस्सति, गत्तानि च सीत करिस्सती, ति’ ।

(१४६) दुतियम्पि खो भगवा आयस्मन्त आनन्द आमन्तेसि—‘इह मे त्व आनन्द ! पानिय आहर, पिपासितोस्मि आनन्द ! पिविस्सामी, ति’ ।

दुतियम्पि खो आयस्मा आनन्दो भगवन्त एतदवोच—‘इदानी भन्ते ! पञ्चमत्तानि सकट सतानि अतिक्रन्तानि त चकच्चिन्न उदक परिच लुलित आविल सन्दति । अथ भन्ते ! ककुधा नदी अविदूरे अञ्चोदका सातोदका सीतोदका सेतोदका सुप्पतित्या रम्मणीया । एत्थ भगवा पानियञ्च पिविस्सति, गत्तानि च सीत करिस्सती, ति’ ।

(१४७) ततियम्पि खो भगवा आयस्मन्त आनन्द आमन्तेसि—‘इह मे त्व आनन्द ! पानिय आहर, पिपासितोस्मि आनन्द ! पिविस्सामी, ति’ ।

(१४५) एसा कटा पर आयुप्मान् आनन्दे भगवान् से यत् कथा—

‘भन्ते ! अभी अभी पाँच सै गान्धियों निरुलो हैं । चवामे मया हिंटा पानी मैला होकर बर रहा है । भन्ते ! यह सुंर जलवाली, शीतल जलवाली, सफेद, सुप्रतिष्ठित रमणीय ककुथा* नदी करीबमे है । वहाँ (चाकर) भगवान पानी पीयेंगे, और शरीरको ठंडा करेंगे ।

(१४६) दूसरी बार भी भगवान्ने ० ।

(१४७) तीसरी बार भी भगवान्ने आगुप्मान् आनन्दे कथा—‘आनन्द ! मरे तिये पात ताओ ० ।’

* वर्गी पिटक मे ‘ककुथा’ पठ है ।

(१४८) 'एव भन्त' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा पत्त गहेत्वा येन सा नदिका, तेनुपसङ्गमि । अय खो सा नदिका चक्खिन्ना परित्ता लुलिता आविला सन्दमाना आयस्मन्ते आनन्दे उपसङ्गमन्ते, अच्चा विप्पसन्ना अनाविला सन्दित्य । अय खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि—'अच्छरियं वत भो ! अब्भूत वत भो ! तथागतस्स महिद्धिकता महानुभावता । अय हि सा नदिका चक्खिन्ना परित्ता लुलिता आविला सन्दमाना मयि उपसङ्गमन्ते अच्चा विप्पसन्ना अनाविला सन्दती, ति' ॥ पत्तेन पानिय आदाय येन भगवा, तेनुपसङ्गमि । उपसङ्गमित्वा भगवन्त एतदवोच—'अच्छरिय भन्ते ! अब्भुत भन्ते ! तथागतस्स महिद्धिकता महानुभावता । इदानि सा भन्ते ! नदिका चक्खिन्ना परित्ता लुलिता आविला सन्दमाना मयि उपसङ्गमन्ते अच्चा विप्पसन्ना अनाविला सन्दित्य । पिवतु भगवा ! पानियं, पिवतु सुगतो ! पानियन्ति' । अय खो भगवा पानिय अपायि ॥

(१४९) तेन खो पन समयेन पुत्रकुत्सो मल्ल पुत्तो आलारस्स

(१४८) "अच्छा भन्ते ।" कह भगवान्का उत्तर ८ पात्र लेकर जहाँ वह नदी थी, वहाँ गये । तत्र वह चक्रास मथे हिंड मैले थोडे पानीक साथ बहनगाली नगी, आयुष्मान् आनन्दके वहाँ पहुँचने पर स्त्रच्छ निर्मल (हो) बहन लागी । तत्र आयुष्मान् आनन्दका गेसा हुआ—'आश्चर्य है । तथागतसी महा-वृद्धि, महानुभावताके अदभुत है । यह नदिका (=छाटी नदी) चक्रास मथ हिँले मैले थोडे पानीक साथ बह रही थी, मेरे मेरे आने पर स्त्रच्छ निर्मल बह रही है ।' और पात्रम पानी भगकर भगवान्के पास ले गये । ले जानर भगवान्मे बह वाल—"०आश्चर्य है भन्ते । अद्भुत है भन्ते । ० निर्मल बह रही है । भन्ते । भगवान् पानी पिये, सुगत पानी पिये ।" तत्र भगवान्ने पानी पिया ।

(१४९) उस समय आलार कालामरा शिष्य पुत्रकुत्स, मल्ल पुत्र बुलीनारा, पावान् बीच, रास्तेम जा रहा था ।

कालामस्त सावरो कुसिनाराय पात्र अद्धान मगपटिपन्नो होति ।
 अद्दस खो पुवकुसो मल्लपुत्तो भगवन्त अञ्जतरस्मि रुखमूले निसिन्न
 दिस्सा येन भगवा, तेनुपसङ्गमि । उपसङ्गमित्वा भगवन्त अभिवादेत्वा एक-
 मन्त निसीदि । एकमन्त निसिन्नो खो पुवकुसो मल्ल पुत्तो भगवन्त
 एतदवोच—‘अञ्जरिय भन्ते ! अञ्जुत भन्त ! सन्नेन वत भन्ते !
 पञ्चजिता विहारेण विहरन्ति ।’ भूतपुञ्ज भन्ते ! आलारो कालामो
 अद्धान मगपटिपन्नो मगा शोकम्म अविदूरे अञ्जतरस्मि रुखमूले
 दिवा विहार निसीदि । अथ खो भन्ते ! पञ्चमत्तानि सकट सतानि
 आलार कालाम निस्साय निस्साय अतिकमिसु । अथ ग्वा भन्ते !
 अञ्जतरो पुरिसो तस्स सकट सतस्स पिद्धितो पिद्धितो आगच्छन्तो येन
 आलारो कालामो, तेनुपसङ्गमि । उपसङ्गमित्वा आलार कालाम एतदवोच—
 ‘अपि भन्ते ! पञ्चमत्तानि सकट सतानि अतिकन्तानि अद्दसाति ?

(१५०) न खो अह आवुसो ! अद्दसन्ति ॥

किं पन भन्ते ! सद अस्सोसी, ति ?

न खो अह आवुसो ! सद अस्सोसिन्ति ॥

एक वृक्षके नीचे बैठे देखा । देग्गर जहाँ भगवान थे, वहाँ जाकर भगवान्को
 अभिवादनकर एक ओर बैठ गया । पुत्रकुस० ने भगवान्से कहा—

“आश्चर्यं भन्ते ! अद्दसुत भन्त । प्राजित (लोग) शातर विहारसे विदरते
 हैं । भन्ते । पूर्वकालमें (एक वार) आलार कालाम रास्ता चलते, मार्गस हटकर
 पासमें दिनेके विहारके लिये एक वृक्षके नीचे बैठे । उस समय पाँच सौ गाळियों
 आलार कालामके पीछेसे गई । तब उस गाळियोंके साथे (= कारवों) के पीछे
 पीछ आते एक आदमीने आलार कालाम के पास जाकर पूछा—‘न्या भन्ते । पाँच
 सौ गाळियों (इधरसे) निरुलते देखा है ?

(१५०) “आवुस । मैंने नहीं देखा ।”

“क्या भत । आवाज सुनी ?”

‘नहीं आवुस । मैं आवाज नहीं सुनी ।’

किं पन भन्ते ! सुत्तो अहोसी, ति ?
 न खो अह आवुसो ! सुत्तो अहोसिन्ति ॥
 किं पन भन्ते ! सञ्जी अहोसी, ति ?
 एवमावुसो !, ति ॥

(१५१) सो त्वं भन्ते ! सञ्जी समानो जागरो पञ्चमत्तानि सरूढ
 सत्तानि निस्साय निस्साय अतिवन्तानि नेव अदस, न पन सद
 अस्ससि । अपि सुते भन्ते ! संघाटि रजेन ओक्किण्णा, ति ?

‘एवमावुसो ! ति’ ॥

(१५२) अय खो भन्ते ! तस्स पुरिसस्स एतदहोसि—‘अञ्जरिय
 वत भा ! अञ्जुत वत भो ! सन्तेन वत भो ! पञ्चजिता विहारेन
 विहरन्ति’ ॥ यत्र हि नाम सञ्जी समानो जागरो पञ्चमत्तानि सरूढ
 सत्तानि निस्साय निस्साय अतिवक्कन्तानि नेव दक्खति, न पन सद
 सोस्सती, ति’ ॥ आलारे कालामे उत्तार पसाद पवेदेत्त्वा पक्कमी, ति ॥

“क्या भन्ते ! सो गये थे ?”

“नहीं आवुस ! सोया नहीं था।”

“क्या भन्ते ! होशमें थे ?”

“हाँ, आवुस !”

(१५१) “तो भन्ते ! आपने हाशमे जागत हुए भी पीछसे निकली पाँच सौ
 गाळियोंके न दया, न (उनका) आवाजना सुना ? किंतु (यह जो) आपकी
 सजाटी पर गर्द पळी है ?”

“हाँ ! आवुस ।”

(१५२) “तत्र भन्ते ! उस पुरुषको हुआ—आश्चर्य है ! अद्भुत है ॥
 अहो प्रसन्नित लोग शान्त विहारसे विहरते हैं, जो कि (इन्होंने) होश में, जागते
 हुये भी पाँच सौ गाळियाँ न देया, न (उनकी) आवाजको सुना ।”—इह आलार
 कालामके प्रति बळी श्रद्धा प्रकट कर ५०

(१५३) तं किं पञ्चसि पृथक्कृतम् ! कतमं तु खो दुर्बलतरं वा दुरभिसम्भवतरं वा ? गो वा सञ्ची समानो जागरो पथ्यमत्तानि सकट सतानि निस्माय निस्माय अनिषकन्तानि नैव पस्सेय्य, न पन सह सुण्येय्य । वा वा सञ्ची समानो जागरो देव-वस्सन्त देवे गलगलायन्ते विञ्जुलतायु निच्छरन्तीयु असनिया फलन्तिया नैव पस्सेय्य, न पन सह सुण्येय्या, ति ॥

(१५४) किञ्चि भन्ते ! कस्मिन्ति पक्षे वा गरुट सतानि, ए वा सकट सतानि, सच वा सकट सतानि, अट्ट वा सकट सतानि, नव वा सकट सतानि, सकट सहस्सं वा सकट मतसहस्सं वा । अथ खो एतदेव दुर्बलतरंश्च दुरभिसम्भवतरंश्च यो सञ्ची समानो जागरो देवे-वस्सन्ते देवे-गलगलायन्त विञ्जुलतायु निच्छरन्तीयु असनिया फलन्तिया नैव पस्सेय्य, न पन सह सुण्येय्या, ति ॥

(१५५) एकमिदाहं पुक्कुस ! समयं आतुमाय विहरामि भुसागारे । तन खो पन समयेन देव वस्सन्ते देव गलगलायन्ते

(१५३) 'तो क्या मानत हा पुक्कुस । वीन दुर्बल है, टु सम्भव है—जो कि होशमे जागने हुये पाँच सौ गालियोवा न दखना, १ आवाज सुनना, अथवा होशमे जागने हुये पाँचके घरमे वादतरे गलगलायन्ते, विजनीके गिरने और अशनि (= विजनी) के गिरने समय भी १ (घमरु) दर न आवाज सुने ?'

(१५४) "क्या है मत । पाँच सौ गालियो, छे सौ०, सान सौ०, आठ सौ०, नौ सौ०, दस सौ०, दस हजार०, या सौ हजार गालियो, यही दुर्बल दु सम्भव है जो कि होश न जागने हुये पाँचके घरमे विजनीके गिरने समय भी न (घमरु) सुने, न आवाज सुने ।"

(१५५) "पुक्कुस । एक समय में आतुमाके भुसागारमे विहार करता था । उस समय देवके घरमे विजनीके गिरनेसे देव भाई कितना और चार बैल मरे । तब आतुमासे आदमियोंकी भील निकल कर वहाँ पहुँची जहाँपर कि वह दो भाई कितान और चार बैल मरे थे । उस समय पुक्कुस । मैं भुसागारमे

विष्णुलतासु निच्छरन्तीसु असनिया फलन्तिया अविदूरे भुसागारस्स द्वेकस्सका भातरो हता चत्तारो च बलिबद्धा । अथ खो पुक्कुस आतुमाय महाजनकायो निक्खमित्वा येन ते द्वेकस्सका भातरो हता चत्तारो च बलिबद्धा, तेनुपसङ्गमि । तेन खो पनाह पुक्कुस ! समयेन भुसागारा निक्खमित्वा भुसागार द्वारे अम्भोकासे चङ्गमामि । अथ खो पुक्कुस ! अञ्चतरो पुरिसो तम्हा महाजनकाया येनाह, तेनुपसङ्गमि । उपसङ्गमित्वा म अग्निवादेत्वा एकमन्त अट्ठासि । एकमन्त ठित खो अह पुक्कुस ! त पुरिस एतदवोच—‘किंनु खो एसो आवुसो ! महाजनकायो सन्निपत्तितो, ति ?’, ‘इदानि भन्ते ! देवे वस्सन्ते देवे-गल्लगलायन्ते विष्णुलतासु निच्छरन्तीसु असनिया फलन्तिया द्वेकस्सका भातरो हता चत्तारो च बलिबद्धा । एत्थे सो महाजनकायो सन्निपत्तितो, ति’ ॥

(१५६) त्वं पन भन्ते ! वव अहोसी, ति ?

इधेव खो अह आवुसो ! अहोसिन्ति ॥

किं पन भन्ते ! अहसा, ति ?

न खो अह आवुसो ! अहसन्ति ॥

किं पन भन्ते ! सद अस्सोसी, ति ?

न खो अह आवुसो ! सद अस्सोसिन्ति ॥

निकलमर द्वारपर टहल रहा था । तत्र पुत्रकुस ! उम भोजसे निकलकर गन् आदमी मेरे पास आ खड़ा होकर बोला—‘भन्ते ! इस समय देवके घरसते० विजतीरे गिरनेमे दो भाई किसान और चार तैल मर गये । इमीलिये यह भीळ इक्की हुई है । आप भन्ते ! (उस समय) कहाँ थे ?’

(१५६) ‘आवुस ! यहाँ था ।’

‘क्या भन्ते ! आपने देखा ?’

‘हाँ, आवुस ! नहीं देखा ।’

किं पन भन्ते ! सुप्तो अहोसी, ति ?
 न यो अह थावुसो ! सुप्ता अहामिन्ति ॥
 किं पन भन्ते सध्वी अहोसी, ति ?
 'पवपावुसो ! ति' ॥

(१५७) सो त्व भन्ते ! मध्वी समानो जागरो देवे वस्सन्ते देवे
 गल्लगलापन्ते विज्जुलतासु निच्छरन्तीसु अमनिया फलन्तिया नेव अरम,
 न पन सह अस्सोसी, ति ? ॥

(१५८) 'पवपावुसो ! ति' ॥

(१५९) अय यो पुत्रहस ! तस्म पुरिसस्म पत्तदहोसि—'अच्छरिय
 वत भा ! अञ्जुत वत भो ! सन्तेन वत भो ! पच्चजिता विहारेण
 विहरन्ति । यत्र द्वि नाप सध्वी समानो जागरो देवे वस्सन्ते देवे-
 गल्लगलापन्ते विज्जुलतासु निच्छरन्तीसु अमनिया फलन्तिया नेव
 दववति, न पन सह सोस्सती, ति' । पयि उल्लार पत्तादं परेदेत्वा म
 अभिरादेत्वा पदविखण कत्ता पवमी, ति ॥

'यथा भन्ते ! मेरा गये थे ?'

'हाँ, आवुस ! माया नहीं था ।'

'यथा भन्ते ! होशमे थे ?'

'हाँ, आवुस ।'

(१५७) 'तो भन्ते ! आपने होशमे जागते हुये भी दक्के वरसने० पिजलीवे
 गिरतेसे न देखा, न शब्दको सुना ?'

(१५८) 'हाँ, आवुस ।'

(१५९) 'वत्र पुत्रहस ! उस आदमीके हुआ—आरच्य है । अरुत है ॥
 अहो प्रजित लोग शान्त विहारसे विहरते हैं० न आवाज सुने ।'—यह मेरे प्रति
 यो भद्रा प्रकटपर चला गया ।'

(१६०) एव वुत्ते पुक्कुसो मल्ल पुत्तो भगवन्तं एतद्वोच—‘एसाह भन्ते ! यो मे आलारे कालामे पसादो, त महावाते वा ओकुनामि सिद्ध-सोताय वा नदिया पवाहेमि । अभिक्कन्त भन्ते ! अभिक्कन्त भन्ते ॥—सेय्यथा पि भन्ते ॥॥ निक्कुञ्जित वा उक्कुञ्जेय्य, पटिच्चन्नं वा विवरेय्य, मुल्लहस्स वा मग आचिक्खेय्य, अन्धफारे वा तेलपञ्जोत धारेय्य, चक्कुपुमन्तो रूपानि दक्खन्ति, एवमेव भगवता अनेक परियायेन धम्मो पकासितो । एसाह भन्ते ! भगवन्त सरणं गच्छामि, धम्मञ्च, भिक्कुसणञ्च । उपासकं म भगवा ! धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेत सरण गतन्ति’ ॥

(१६१) अथ खो पुक्कुसो मल्ल पुत्तो अज्जतर पुरिसं आमन्तेसि—
‘इह मे त्व भणे ! सिद्धी वएण युगमद्व धारणियं आहरा, ति’ ॥

(१६२) एव भन्ते ! ति खो सो पुरिसो पुक्कुसस्स मल्ल पुत्तस्स पटिस्सुत्वा त सिद्धी वएण युगमद्व धारणिय आहरि । अथ खो पुक्कुसो

(१६०) ऐसा कहनेपर पुक्कुस मल्लपुत्रने भगवान्से यह कहा—

‘भन्ते । यह मैं, जो मेरा आलार कालाममें भद्रा (=प्रसाद) थी, उसे हवा में उड़ा देता हूँ, या शीघ्र धारवाली नदीमें बहा देता हूँ । आश्चर्य भते । अद्भुत भते । जैसे आँधेको सीधा कर दे, हँकेको गोल दे, मूलेको रास्ता बतला दे, अंधेमें चिराग रख दे, कि आँधवाते रूपको देखें, ऐमे ही भते । भगवान्ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया । यह मैं भन्ते । भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और भिन्नु मंपयी भी । आजसे मुझे भगवान् अजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें ।’

(१६१) तत्र पुक्कुस मल्लपुत्रने (अपने) एव आदमीसे कहा—“आ रे ! मेरे इगुरुके बर्णवाले चमकते दुशालेको तो आ ।”

(१६२) “अच्छा, भन्ते ॥”—यह उस आदमीने पुक्कुस मल्लपुत्रको कह, ० दुशालेको ला दिया । तत्र पुक्कुस मल्लपुत्रने ० दुशाला भगवान्को अपित किया—“भन्ते । कृपाकरके इस मेरे ० दुशालेको स्वीकार करें ।”

मह पुत्रो त सिद्धी वरण युगमह धारणियं भगवतो उपनामेसि—'इद भन्ते ! सिद्धी वरण युगमह धारणियं त मे भगवा पटिगएहातु अनुकम्प उपादाया, ति' ॥

(१६३) 'तेन हि पुत्रुस ! एकेन म अच्छादेहि, एकेन आनन्दन्ति' ॥

(१६४) 'एव भन्ते' ति खो पुत्रुसो मल्लपुत्रो भगवतो पटिस्सुत्वा एकेन भगवन्त अच्छादेसि, एकेन आयस्सन्त आनन्द । अथ खो भगवा पुत्रुग मल्लपुत्र धम्मिया कयाय सन्दस्सेसि समादपेमि समुत्तेजेसि सपहसेमि । अथ खो सो पुत्रुसो मल्ल-पुत्रो भगवता धम्मिया कयाय सन्दस्सितो समादपितो समुत्तेजितो सपहसिता उट्ठायासना भगवन्त अभिवादेत्वा पदक्खिण कत्वा पक्कमि ॥

(१६५) अथ खो आयस्सा आनन्दो अचिर पक्कन्ते पुत्रुसे मल्ल-पुत्रे त सिद्धी वरण युगमह धारणिय भगवतो काय उपनामेसि । त भगवतो काय उपनामितं हतच्चित्तविय खायति । अथ खो आयस्सा आनन्दो भगवन्त पत्तदवोच—'अच्छरिय भन्ते ! अन्मुत भन्ते ! याव परिसुद्धो भन्ते ! तथागतस्स ह्वि वरणो परियोदातो । इद भन्ते ! सिद्धी

(१६३) "तो पुत्रुस ! एक मुझे ओढ़ा दे, एक आनंदो ।"

(१६४) "अच्छा, भन्ते ॥"—कह, पुत्रुस मल्लपुत्रो भगवान्को उत्तर दे, एक ० शाल भगवान्को ओढ़ा दिया, एक ० आयुष्मान् आनंदको । तत्र भगवान्ने पुत्रुस मल्लपुत्रको धार्मिक कथा द्वारा संदर्शित = समुत्तेजित सप्रहर्षित किया । भगवान्की धार्मिक कथा द्वारा ० सप्रहर्षित हो पुत्रुस मल्लपुत्र आसनसे उठ भगवान्को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया ।

(१६५) तत्र पुत्रुस मल्लपुत्रके जानेके धोळीही देर बाद आयुष्मान् आनंदने उस (अपने) ० शालको भगवान्के शरीरपर ढाँक दिया । भगवान्के शरीरपर किरणमी फूटी जान पळती थी । तत्र आयुष्मान् आनंदन भगवान्से यह कहा—"आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! कितना परिशुद्ध = पर्यवदात तथागत

वण्ण युगमह धारणिय भगवतो काय उपनामित हतच्चित्तविय
खायती, ति' ॥

(१६६) एवमेत आनन्द ! एवमेत आनन्द ! द्वीसु कालेसु अतिविय
तथागतस्स परिसुद्धो कायो होति छवि वण्णो परियोदातो । कतमेसु
द्वीसु ? [१] यञ्च आनन्द ! रत्ति तथागतो अनुत्तर सम्मा-सम्बोधिं
अभिसम्बुञ्जति । [२] यञ्च रत्ति अनुपादिसेसाय निब्वान धातुया
परिनिब्वायति । इमेसु खो आनन्द ! द्वीसु कालेसु अतिविय
तथागतस्स कायो परिसुद्धो होति छवि वण्णो परियोदातो ।
अञ्ज खो पनानन्द ! रत्तिया पच्छिमे यामे कुसिनारायं
उपवत्तने मल्लान सालवने अन्तरेण यमक सालान तथागतस्स
परिनिब्वान भविस्सती, ति । आयामानन्द ! येन ककुधा नदी,
तेनुपसङ्गमिस्सामा, ति ॥

(१६७) 'एवं भन्ते' ति खो आयस्सा आनन्दो भगवतो पचस्सोसि ॥

के शरीरका वर्ण है ॥ भन्ते । यह ० दुशाला भगवान्के शरीरपर किरणसा
जान पळता है ।"

(१६६) "ऐसा ही है आनन्द । ऐसा ही है आनन्द । दो समयोंमें आनन्द ।
तथागतके शरीरका वर्ण अत्यन्त परिशुद्ध = पर्यवदात जान पळता है । किन् दो
समयोंमें ? [१] जिस समय तथागतने अनुपम सम्यक्-संबोधि (= परमज्ञान) का
साक्षात्कार किया, और [२] जिस रात तथागत उपादि (= आवागमनके कारण
रहित निर्वाणको प्राप्त होते हैं । आनन्द ! इन दो समयोंमें ० । आनन्द ! आज रातक
पिछले पहर कुसीनाराके उपवर्तन (नामक) मल्लोंके शालवनमें जोड़े शाल
वृक्षोंके बीच तथागतका परिनिर्वाण होगा । आओ, आनन्द ! जहाँ ककुत्था नदी
है, वहाँ चलो ।"

(१६७) "अच्छा, आयुष्मान् आनन्दने भगवान्को उत्तर "

मत् पुत्रो त सिद्धी वण्ण युगमह धारणियं भगवतो उपनामेसि—^६
 भन्ते । सिद्धी वण्ण युगमह धारणियं तं मे भगवा पटिगएहा
 अनुकम्प उपादाया, ति' ॥

(१६३) 'तेन हि पुक्कुस ! एकेन म अच्छाणेहि, एकेन आनन्दन्ति'

(१६४) 'अथ भन्ते' ति खो पुक्कुसो मल्लपुत्तो भगवतो पटिस्सुत्त

एकेन भगवन्त अच्छादेसि, एकेन आयस्सन्त आनन्द । अथ खो भ
 पुक्कुमं मल्लपुत्त धम्मिया कयाय सन्दस्सेसि समादपेमि समुत्तेजेसि
 सपहसेसि । अथ खो सो पुक्कुसो मल्ल-पुत्तो भगवता धम्मिया
 कयाय सन्दस्सितो समादपितो समुत्तेजितो सपहसितो उदायासना
 भगवन्त अभिवादेत्वा पदक्खिण कत्वा पकमि ॥

(१६५) अथ खो आयस्सा आनन्दो अचिर पक्कन्ते पुक्कुसे मल्ल-पुत्ते
 त सिद्धी वण्ण युगमह धारणिय भगवतो काय उपनामेसि । त भगवतो
 काय उपनामित हतच्चित्तविय खायति । अथ खो आयस्सा आनन्दो
 भगवन्त एतदवोच—'अच्छरिय भन्ते ! अद्भुतं भन्ते ! याव परिशुद्धो
 भन्ते ! तथागतस्स छवि वण्णो परियोदातो । इदं भन्ते ! सिद्धी

(१६३) "ते पुक्कुस ! एक मुझे ओढा दे, एक आनंदने ।"

(१६४) "अच्छा, भन्ते ।"—कह, पुक्कुस मल्लपुत्रने भगवान्को बत्तर दे,
 एक ० शाल भगवान्को ओढा दिया, एक ० आयुष्मान् आनंदको । तब भगवान्ने
 पुक्कुस मल्लपुत्रको धार्मिक कथा द्वारा संदर्शित = समुत्तेजित सप्रदर्शित किया ।
 भगवान्को धार्मिक कथा द्वारा ० सप्रदर्शित ही पुक्कुस मल्लपुत्र आनंदसे उठ
 भगवान्को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया ।

(१६५) तब पुक्कुस मल्ल-पुत्रके जानेके थोड़ीही देर बाद आयुष्मान्
 आनंदने उस (अपने) ० शालको भगवान्के शरीरपर ढाँक दिया । भगवान्के
 शरीरपर विरलमी फूटी जान पळती थी । तब आयुष्मान् आनंदने भगवान्से
 यह कहा—"आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! कितना परिशुद्ध = पर्यवदात तथागत

वण्ण युगमह धारणिय भगवतो काय उपनामित हतचित्तविय
खायती, ति' ॥

(१६६) एवमेत आनन्द ! एवमेत आनन्द ! द्वीसु कालेषु अतिविय
तयागतस्स परिसुद्धो कायो होति द्ववि वण्णो परियोदातो । कतमेषु
द्वीसु ? [१] यञ्च आनन्द ! रत्ति तयागतो अनुत्तर सम्मा-सम्बोधिं
अभिसम्बुज्झति । [२] यञ्च रत्तिं अनुपादिसेसाय निब्बान धातुया
परिनिब्बायति । इमेषु खो आनन्द ! द्वीसु कालेषु अतिविय
तयागतस्स कायो परिसुद्धो होति द्ववि वण्णो परियोदातो ।
अञ्ज खो पनानन्द ! रत्तिया पन्दिमे यामे कुस्सिनारायं
उपवत्तने मल्लानं सालवने अन्तरेण यमक सालान तयागतस्स
परिनिब्बान भविस्सती, ति । आयामानन्द ! येन ककुधा नदी,
तेनुपसङ्गमिस्सामा, ति ॥

(१६७) 'एव भन्ते' ति खो आयस्सा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि ॥

के शरीरका वर्ण है ॥ भन्ते । यह ० दुशाला भगवान्के शरीरपर विरणसा
जान पळ्ता है ।”

(१६६) “एसा ही है आनन्द । ऐसा ही है आनन्द । दो समयमें आनन्द ।
तथागतके शरीरका वर्ण अत्यन्त परिशुद्ध = पर्यदात जान पळ्ता है । किन दो
समयमें ? [१] जिस समय तथागतने अनुपम सम्यक्संबोधि (= परमज्ञान) का
साक्षात्कार किया, और [२] जिस रात तथागत उपादि (= आवागमनके कारण
रहित निर्वाणको प्राप्त होते हैं । आनन्द ! इन दो समयोंमें ० । आनन्द ! आज गतक
पिछले पहर कुसीनाराके उपवर्त्तन (नामक) मटलौके शालवनमें जोड़े शाल
वृक्षोंके बीच तथागतका परिनिर्वाण होगा । आओ, आनन्द ! जहाँ ककुत्था नदी
है, वहाँ चलो ।”

(१६७) “अच्छा, भन्त !” कह आशुप्मान् आनन्दने भगवान्को उत्तर दिया ।

सिद्धी घण्टं युगमद्द, पुक्कुसो अभिहारयि ।
तेन अच्चादितो सत्या, हेम घण्टा असोभया, ति ॥

(१६८) अथ खो भगवा महता भिवणु-सवेन सद्धि येन ककुथा नदी,
तेनुपसङ्गमि । उपसङ्गमित्वा ककुथ नदिं अम्भोगाहेत्वा न्दत्वा च
पिबित्वा च पधुत्तरित्वा येन अम्भवन, तेनुपसङ्गमि । उपसङ्गमित्वा
आयस्सन्त चुन्दक आपन्तेसि—‘इह मे त्वं चुन्दक ! चतुगुण
सघाटि पञ्चपेहि । किलन्तोस्मि चुन्दक ! निप्पिञ्जिस्सामी, ति’ ॥

(१६९) ‘एवं भन्ते’ ति खो आयस्सा चुन्दको भगवतो पटिस्सुत्वा
चतुगुण सघाटि पञ्चपेसि । अथ खो भगवा दक्खिणेन पस्सेन
सीह-सेय्य कप्पेसि पादेन पादं अघाधाय सतो सम्पजानो उट्ठान
सच्च्य मनसि करित्वा । आयस्सा पन चुन्दको तत्थेवः भगवतो
पुरतो निसीदि ॥

(१७०) गन्तवान बुद्धा नदिय ककुथ,
अच्छोदक सातोदक विपसन्न ।

इगुर वर्णवाले चमरुव दुशालेका पुक्कुस्सने अर्पण किया ।
वनसे आच्छादित बुद्ध सानेके वर्ण जैसे शोभा दते थे ॥

(१६८) तत्र महाभिक्षु संघके साथ भगवान् जहाँ ककुथा नदी थी, वहाँ
गये । जाकर ककुथा नदीको अवगाहन कर, स्नानकर, पानकर उतरकर, जहाँ
अम्भवन (आम्भवन) था, वहाँ गये । जाकर आयुष्मान् चुन्दकसे बोले—
“चुन्दक ! मेरे लिये चौपेती सघाटी विद्या दे । चुन्दक थक गया हूँ, लेटूँगा ।”

(१६९) “अच्छा भन्त ।” तत्र भगवान् पैर पर पैर रख, स्मृति स
प्रजन्यके साथ, उन्धान-सज्ञा मनमे करके, दाहिनी करपट सिंह शय्यासे लेटे । आयु
ष्मान् चुन्दक वहाँ भगवान्के सामने बैठे ।

(१७०) बुद्ध वराम, सुन्दर स्वच्छ जलवाली ककुथा नदी पर जा,

ओगाहि सत्या अकिलन्तरूपो,
 तथागतो अप्पटिमो च लोके ॥
 न्हत्वा च पिवित्वा चुन्दकेन सत्या,
 पुरक्खतो भिक्खु-गणस्स मज्जे ।
 वत्ता पवत्ता भगवा इध धम्मो,
 उपागमि अम्बवन महेसि ।
 आमन्तयि चुन्दक नाम भिक्खु,
 चतुग्गुणं सन्धर मे निपज्ज ।
 सो मोदितो भावितत्तेन चुन्दा,
 चतुग्गुणं सन्धरि खिप्पमेव ।
 निप्पज्जि सत्या अकिलन्त रूपो,
 चुन्दो पि तस्य समुत्थे निसीदि ॥

(१७१) अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्द आमन्तेसि—‘यो खो पनानन्द ! चुन्दस्स कम्मर पुत्तस्स कोचि विप्पटिसार उप्पादेय्य ।— तस्स ते आबुसो चुन्द ! अलाभा तस्स ते दुस्सलद्ध यस्स ते तथागतो पच्छिम पिएडपात परिभुञ्जित्वा परिनिब्बुतो, ति’ । चुन्दस्स आनन्द !

लोकम अद्वितीय, शास्तान अ-क्लान्त हो स्नान किया । स्नानकर, पानकर चुन्दकको आगे कर भिक्षु-गणके बीचमे (चलत) धर्मके वस्ता प्रवक्ता महर्षि भगवान् आम्रवनमे पहुँचे ॥ चुन्दक भिक्षुसे कहा—‘सौपेती रांघाटी गिद्धाओ, लेटूँगा । आत्मसंयमीसे प्रेरित हो तुम्हें सौपेती (रांघाटी) को गिद्धा दिया । अमलान्त हो शाला रांघे, चुन्दक भी वहाँ गामो बैठ गय ॥१८॥ तत्र भगवान्ते आयुग्गण्ण आगन्ते मत्तं—

(१७१) “आनन्द ! शायद कोई चुन्द कम्मोत्पुत्तका चितित कर (= विप्पटिसार उपदहेय) (और कह)—‘आबुस चुन्द ! अलाभा दी तुम्हें, पूरा दुलाभ कमाया, जो कि तथागत मंत्र विष्णुपातको भाषनकर परिनिर्वाणको प्राप्त हुये ।’ आनन्द ! चुन्द कम्मोत्पुत्तकी इस चितिता दूर करना (और कहता)—‘आयुग ।

कम्मर पुत्तस्स एनं विप्वटिसारो पटिविनेत्तञ्चा । “तस्म ते आरुसो
चुन्द । लाभा तस्म तेगु लद्धं यस्स ते तथागतो पच्चिदमं पिण्डपात
परिभुञ्जित्वा परिनिव्वुत्तो ।”

(१७२) समुत्ता मे त आरुसो चुन्द । भगवता सुत । समुत्ता
पटिग्गहित—“द्वे मे पिण्डपाता समा सम फला सम विपाका । अतिविय
अब्ब्वेहि पिण्डपाते हि महफलतरा च महानिससतरा च । कतमे द्वे ?
[१] यञ्च पिण्डपातं परिभुञ्जित्वा तथागतो अनुत्तर गम्मा सम्भोधि
अभिसम्भुञ्जति । [२] यच्च पिण्डपात परिभुञ्जित्वा तथागतो अनु-
पादिसेसाय निव्वान धातुया परिनिव्वयाति । इमे द्वे पिण्डपाता
समा सम फला सम-विपाका । अतिविय अब्ब्वे हि पिण्डपाते हि
महफलतरा च महानिससतरा च । आयु सत्तनिक आयस्मता
चुन्देन कम्मर पुत्तेन कम्म उपचितं । वण्ण सवत्तनिक आयस्मता
चुन्देन कम्मर पुत्तेन कम्म उपचितं । सुख सवत्तनिक आयस्मता
चुन्देन कम्मर पुत्तेन कम्म उपचितं । यस सवत्तनिक आयस्मता
चुन्देन कम्मर पुत्तेन कम्म उपचितं । सग सत्तनिक आयस्मता चुन्देन
कम्मर पुत्तेन कम्म उपचितं । अधिपत्तय्य-संवत्तनिक आयस्मता

लाभ है तुम्हें, तूने मुलाभ कमाया, जो कि तथागत तरे पिण्डपातको भोजनकर
परिनिर्वाणको प्राप्त हुये ।”

(१७२) आरुस चुन्द । मैं यह भगवान्के मुन्धसे सुना, मुन्धसे ग्रहण
क्रिया—‘यह दो पिण्ड पात समान फलवाले = समान विपाकवाले हैं, दूसरे पिण्डपातों
मे बहुत ही महाफल प्रद = महावृशसतर हैं । कौनसे दो ? [१] जिस पिण्डपात
(= भिक्षा) को भोजनकर तथागत अनुत्तर सम्बुद्धि (= बुद्धत्व) को प्राप्त हुये,
[२] और जिस पिण्डपातको भोजनकर तथागत अनुत्तर उपादिशय निर्वाणधातु (= दुःख
कारण रहित निर्वाण) को प्राप्त हुये । आनन्द । यह दो पिण्डपात ० । चुन्द कर्मारुपुत्ते
आयु प्राप्त करानेवाले कर्मको संचित किया, ० वर्ष ०, ० सुख ०, ० यश ०, ० स्वर्ग ०, ०

चुन्देन कम्ममार पुत्तेन कम्मं उपचितन्ति ॥” चुन्दस्स आनन्द ! कम्ममार पुत्तस्स एव विष्पटिसारो पटिविनेतब्बो, ति ॥

(१७३) अथ खो भगवा एतमत्य विदित्वा ताय वेलायं इमं उदान उदानेसि—

(१७४) ददतो पुञ्ज पवद्दति, सयमतो वेर न चियति ।

कूसलो पजहाति पापकं, राग दोस मोहक्खया स निब्बुतो, ति ॥

भाणवार चतुत्य ॥ ४ ॥

(१७५) अथ खो भगवा आयस्मन्त आनन्द आमन्तेसि—

‘आयामानन्द ! येन हिरञ्जवतिया नदिया पारिम तीर येन कुसिनारा उपवत्तनं मल्लानं सालवन तेनुपसङ्गमिस्सामा, ति’ ॥

(१७६) ‘एव भन्ते’ ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि ।

आधिपत्य प्राप्त कर्मानाले कर्मको संचित किया । आनन्द ! चुन्द कर्मारपुत्रकी चिन्ताको इस प्रकार दूर करना ।”

(१७३) तब भगवान्ने इसी अर्थको जानकर उसी समय यह उदान कहा—

(१७४) “ (दान) देनेसे पुण्य बढ़ता है, समयसे वैर नहीं संचित होता ।

सजा बुराईको छोड़ता है, (और) राग द्वेष मोहके ज्ञयसे वह

निर्वाण प्राप्त करता है ॥ १७ ॥

(उक्ति) चतुर्थ भाणवार ॥ ४ ॥

जीवनकी अन्तिम घळियाँ

(१७५) तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—“आओ

आनन्द ! जहाँ हिरण्यवती नदीका परला तीर है, जहाँ कुसिनाराके मल्लोंका

शालवन उपवत्तन है, वहाँ चलो ।”

(१७६) “अच्छा भन्ते ॥” ० ।

(१७७) अथ खो भगवा महता भिवरु संघेन सद्धि येन हिरञ्ज्यवतिया नदिया पारिम तीर, येन कुसिनारा उपवत्तन मछान सालवन, तेनुप-सङ्गमि । उपसङ्गमित्वा आयस्सन्त आनन्द आमन्तेसि—‘इह मे त्व आनन्द ! अन्तरेण यमक सालानं उत्तर सीसक मञ्चक पञ्चपेहि । किलन्तोस्मि आनन्द ! निष्पिञ्जिस्सामी, ति’ ॥

(१७८) ‘एव भन्ते’ ति खो आयस्सा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा अन्तरेण यमक सालान उत्तर सीसक मञ्चकं पञ्चपेसि । अथ खो भगवा दक्खिण्येण पस्सेन सीह सेट्थ कप्पेसि पादेन पाद अच्चाधाय सतो सम्पजानो ।

(१७९) तेन खो पन समयेण यमक साला सब्ब फालि कुब्बला होन्ति अकाल पुप्फेहि । ते तथागतस्स सरीर ओकिरन्ति अञ्जोकिरन्ति अभिप्पकिरन्ति तथागतस्स पूजाय । दिब्बानि पि मन्धारव पुप्फानि अन्तलिक्खा पपतन्ति । तानि तथागतस्स सरीर थोकिरन्ति अञ्जोकिरन्ति अभिप्पकिरन्ति तथागतस्स पूजाय । दिब्बानि पि चन्दन चुण्णानि अन्तलिक्खा पपतन्ति, तानि तथागतस्स सरीर आकिरन्ति अञ्जोकिरन्ति अभिप्पकिरन्ति तथागतस्स पूजाय । दिब्बानि पि तूरियानि अन्तलिक्खे वज्जन्ति तथागतस्स पूजाय । दिब्बानि पि समीत्तानि अन्तलिक्खे वत्तन्ति तथागतस्स पूजाय ॥

(१७७) तत्र भगवान् महाभिषु संघके साथ जहाँ हिरण्यवती ० मल्लिका शालवन था, वहाँ गये । जान् आदुष्मान् आनन्दसे बोले—“आनन्द ! यमक (= जुब्बे) शालोंके बीचमें उत्तरकी ओर सिंहाजान् चारपाई (= मंचक) बिछा दे । धर्रा हूँ, आनन्द ! लेटूँगा ।”

(१७८) ‘अत्र भन्ते !’ ० । तत्र भगवान् ० दाहिनी करघट सिंह शय्यासे लेटे ।

(१७९) उस समय अकालहीमें वह जोड़े शाल खून पृते हुये थे । तथागतकी पूजाके लिये वे (पूल) तथागतके शरीरपर बिखरते थे । दिव्य मन्धार पुष्प आकाश में गिरते थे, वर तथागतके शरीर पर गिरते थे । दिव्य चन्दन चूर्ण ० । तथागतकी पूजाके लिये आकाशमें दिव्य वाद्य बजते थे । ० दिव्य संगीत ० ।

(१८०) अथ खो भगवा आयस्मन्त आनन्द आयस्मन्तेसि—‘सन्ध फालि फुल्ला खो आनन्द ! यमक साला अकाल पुष्पेहि । ते तथागतस्स सरीर ओकिरन्ति अञ्जोकिरन्ति अभिप्पकिरन्ति तथागतस्स पूजाय । दिब्बानि पि मन्धारव पुष्फानि अन्तलिक्खा पपत्ति । तानि तथागतस्स सरीर ओकिरन्ति अञ्जोकिरन्ति अभिप्पकिरन्ति तथागतस्स पूजाय । दिब्बानि पि चन्दन चुण्णानि अन्तलिक्खा पपत्ति तानि तथागतस्स सरीर ओकिरन्ति अञ्जोकिरन्ति अभिप्पकिरन्ति तथागतस्स पूजाय । दिब्बानि पि तूरियानि अन्तलिक्खे वज्जन्ति तथागतस्स पूजाय दिब्बानि पि सगीतानि अन्तलिक्खे वत्तन्ति तथागतस्स पूजाय । “न खो आनन्द ! एत्तावता तथागतो सकतो वा होति गरुकतो वा मानितो वा पूजितो वा अपचितो वा । यो खो आनन्द ! भिक्खु वा भिक्खुनी वा उपासको वा उपासिका वा धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो विहरति सामिच्चिप्पटिपन्नो अनुधम्मचारो, सो तथागत सकरोति गरु करोति मानेति पूजेति अपचियति परमाय पूजाय । तस्मात्तिहानन्द ! धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना विहरिस्साम सामिच्चिप्पटिपन्ना अनुधम्मचारिनो, ति । एवं हि वो आनन्द ! सिक्खितवन्ति ॥”

(१८१) तेन खो पन समयेन आयस्मा उपवाणो भगवतो पुरतो ठितो हाति भगवन्तं धीजमानो । अथ खो भगवा आयस्मन्त उपवाण अपसारेति ।

(१८०) तत्र भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—“आनन्द ! इस समय अकालहीमे यह जोड़े शाल वृक्ष फुले हुये हैं । ० । किन्तु, आनन्द ! इससे तथागत मन्कृत गुरुकृत, मानित पूजित नहीं होने । आनन्द ! जो कि भिक्षु या भिक्षुणी उपासक या उपासिका धर्मके मार्गपर आरूढ हो विहरता है, यथार्थ मार्गपर आरूढ हो धर्मानुसार आचरण करनेवाला होता है, उससे तथागत ० पूजित होते हैं । ऐसा आनन्द ! तुम्हें सीखना चाहिये ।”

(१८१) इस समय आयुष्मान् उपवान भगवान्पर पर्या भल्लते भगवान्के सामने रखे थे । तत्र भगवान्ने आयुष्मान् उपवानको हटा दिया—

(१८२) “अपेहि भिवसु ! मा मे पुरतो अट्टामी, ति ॥”

(१८३) अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स पतदहोसि—“अथ खो आयस्मा उपवाणो दीघरत्त भगवतो उपट्ठाको सन्तिकावचरो समीपचारी । अथ च पन भगवा पच्छिमे काले आयस्मन्त उपवाण अपसारेति—‘अपेहि भिवसु ! मा मे पुरतो अट्टासी, ति’ । कोनु खो हेतु को पचया ? य भगवा आयस्मन्त उपवाण अपसारेति—‘अपेहि भिवसु ! मा मे पुरतो अट्टासी, ति’ ॥

(१८४) अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवन्त पतदवोच—

अथ भन्ते ! आयस्मा उपवाणो दीघरत्त भगवतो उपट्ठाको सन्तिकावचरो समीप चारी । अथ च पन भगवा पच्छिमे काले आयस्मन्त उपवाण अपसारेति—‘अपेहि भिवसु ! मा मे पुरतो अट्टासी, ति’ । कोनु खो भन्ते ! हेतु को पचयो ? य भगवा आयस्मन्त उपवाण अपसारेति—‘अपेहि भिवसु ! मा मे पुरतो अट्टासी, ति’ ॥

(१८५) येस्य्येन आनन्द ! दससु लोकधातूसु देवता सञ्जिपतिता तथागत दस्सनाय । यावता आनन्द ! कुसिनारा उपवसन मल्लान

(१८२) “हट जाओ, भिक्षु ! मत मेरे सामने रखे होश्रा ।”

(१८३) तत्र आयुष्मान् आनन्दो यत्त ह्नुत्वा—“यह आयुष्मान् उपवाण चिरकालतक भगवान्क समीप चारी = सन्तिकावचर उपस्थाक रहे हैं । किन्तु अन्तिम समयमें भगवान्ने उन्हें हटा दिया—हट जाओ ! भिक्षु ० । क्या हेतु = प्रयय है, जो कि भगवान्ने आयुष्मान् उपवाणको हटा दिया—० ?”

(१८४) तत्र आयुष्मान् आनन्दन भगवान्मे यत्त वहा—

“भन्ते ! यह आयुष्मान् उपवाण चिरकाल तत्र भगवान्क ० उपस्थापक रहे हैं । ० क्या हेतु ० है ?”

(१८५) “आनन्द ! बहुतेसे दर्शों लोक धातुओंके देवता तथागतक दर्शनके लिये एकत्रित हुये हैं । आनन्द ! जितना (यह) कुसिनाराका उपवर्तन मल्लोका शालवन है,

सालवन समन्ततो द्वादस योजनानि नदिय सो पदेसो वालग्नकोटि
नितुदनमत्तोपि महेसकरा हि देवता हि अप्फुटो । देवता आनन्द !
उज्झायन्ति दूरा च वतम्हा आगता तथागत दस्सनाय—‘कदाचि
रत्तिया पच्छिमे यामे करहचि तथागता लाके उप्पज्जन्ति अरहन्तो
सम्मासम्बुद्धा । अज्जेव तथागतस्म परिनिब्बान भविस्सति ।’ ‘अय
च महेसकरो भिक्खु भगवतो पुरतो ठितो ओवारन्तो । न मय लभाम
पच्छिमे काले तथागत दस्सनाया, ति’ ॥

(१८६) कथ भूता पन भन्ते ! भगवा देवता मनसि करोन्ती, ति ?

(१८७) सन्तानन्द ! देवता आकासे पथवी सञ्चिनियो । कैसे
पकिरिय कन्दन्ति । बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति । छिन्नपात पपतन्ति ।
आवट्टन्ति विचट्टन्ति । “अति खिप्प भगवा परिनिब्बायिस्सति !, अति
खिप्पं सुगतो ! परिनिब्बायिस्सति, अति खिप्प चक्खुमा ! लोके अन्तर-
धायिस्सती, ति ॥” सन्तानन्द ! देवता पथविय पथवी सञ्चिनियो ।
कैसे पकिरिय कन्दन्ति । बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति । छिन्न पात पपतन्ति ।

उसकी चारा ओर बारह योजन तक बालके मोक गळान भरके लिय भी स्थान नहीं है,
जहाँ कि महेशास्य देवता न हो । आनन्द ! देवता परेशान हो रहे हैं—‘हम
तथागतके दर्शनार्थ दूरसे आये हैं । तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध कभी ही कभी
लोकमें उत्पन्न होते हैं । आज ही रातके अन्तिम पहरमें तथागतका परिनिर्वाण होगा ।
और यह महेशास्य (= प्रतापी) भिक्षु ढोंकते हुये भगवान्के सामने खड़ा है ।
अन्तिम समयमें हमे तथागतका दर्शन नहीं मिल रहा है ।

(१८६) “भन्त ! भगवान् देवताओंके बारेमें कैसे देस रहे हैं ?”

(१८७) “आनन्द ! देवता आकाशको पृथिवी ट्यालकर बाल गोलो रो रहे हैं ।
हाथ पकळकर चिला रहे हैं । कटे (घृत्त) की भाँति भूमिपर गिर रहे हैं । (यह
रुहत) लोट पोट रहे हैं—‘बहुत जल्दी भगवान् निर्वाणको प्राप्त हो रहे हैं । बहुत
शीघ्र सुगम निर्वाणको प्राप्त हो रहे हैं । बहुत शीघ्र च्छुमान् (= बुद्ध) लोकसे

(१८०) “अपेहि भिक्षु ! मा मे पुरतो अट्टासी, ति ॥”

(१८३) अथ खो आयस्मतो आनन्दस्म षटदशोति—“अथ मा आयस्मा उपवाणो दीपरत्त भगवतो उपट्ठाको सन्तिकारचरो समीपचारी । अथ च पन भगवा पच्छिमे काले आयस्मन्तं उपवाण अपसारेति—‘अपेहि भिक्षु ! मा मे पुरतो अट्टासी, ति’ । कोनु खो हेतु को पचयो ? य भगवा आयस्मन्त उपवाण अपसारेति—‘अपेहि भिक्षु ! मा मे पुरतो अट्टासी, ति’ ॥

(१८४) अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवन्त षटदशोच—

अथ भन्ते ! आयस्मा उपवाणो दीपरत्त भगवता उपट्ठाको सन्तिकारचरो समीपचारी । अथ च पन भगवा पच्छिमे काले आयस्मन्तं उपवाण अपसारेति—‘अपेहि भिक्षु ! मा मे पुरतो अट्टासी, ति’ । कोनु खो भन्ते ! हेतु को पचयो ? य भगवा आयस्मन्त उपवाण अपसारेति—‘अपेहि भिक्षु ! मा मे पुरतो अट्टासी, ति’ ॥

(१८५) येभ्युपेन आनन्द ! दससु लोकधातुसु देवता सन्नियतित्वा तथागत दस्सनाय । यावता आनन्द ! कुसिनारा उपवर्तन मल्लान

(१८२) “हट जाओ, भिक्षु । मत मेरे सामने खड़े होना ।”

(१८०) तत्र आयुष्मान् आनन्दो यह हुआ—“यह आयुष्मान् यथा चिरकारात्तु भगवान्के समीप चारी = सन्तिकारचर उपस्थात्तु रहे हैं । किन्तु अन्ति समयमें भगवान्ने उन्हें हटा दिया—हट जाओ । भिक्षु ० । क्या हेतु = प्रयय जो कि भगवान्ने आयुष्मान् उपवान्तो हटा दिया—० ?”

(१८४) तत्र आयुष्मान् आनन्दने भगवान्के यह कहा—

“भन्ते । यह आयुष्मान् उपवान् चिरकारा तत्र भगवान्के ० उपस्थात्तु हैं । ० नया हेतु ० है ?”

(१८५) “आनन्द । बहुतसे दस लोक धातुओंके देवता तथागतके दर्शनके ति पक्कित हुये हैं । आनन्द । जितना (यह) कुसिनाराका उपवर्तन मल्लका शालन

सालवन समन्ततो द्वादस योजनानि नरिय सो पदेसो वालगगोठि
नितुदनमत्तोपि महेसक्खा हि देवता हि अप्फुटो । देवता आनन्द !
उष्णायन्ति दूरा च वतम्हा आगता तथागत दस्सनाय—‘कदाचि
रत्थिया पच्छिमे यामे करहचि तथागता लाके उप्पज्जन्ति अरहन्तो
सम्मामम्बुद्धा । अज्जेव तथागतस्म परिनिव्वान भविस्सति ।’ ‘अय
च महेसक्खो भिक्खु भगवतो पुरतो ठितो ओवारन्तो । न मय लभाम
पच्छिमे काले तथागत दस्सनाया, ति’ ॥

(१८६) कथ भूता पन भन्ते ! भगवा देवता मनसि करान्ती, ति ?

(१८७) सन्तानन्द ! देवता आकासे पथवी सञ्जिनियो । केसे
पकिरिय कन्दन्ति । बाहा पग्गद्ह कन्दन्ति । छिन्नपात पपतन्ति ।
आवट्टन्ति विवट्टन्ति । “अति खिप्प भगवा परिनिव्वायिस्सति !, अति
खिप्प सुगतो ! परिनिव्वायिस्सति, अति खिप्प चक्खुमा ! लोके अन्तर-
थायिस्सती, ति ॥” सन्तानन्द ! देवता पथविय पथवी सञ्जिनियो ।
केसे पकिरिय कन्दन्ति । बाहा पग्गद्ह कन्दन्ति । छिन्न पात पपतन्ति ।

उसकी चारों ओर बारह योजन तक बालक नोक गलान भरक लिय भी स्थान नहीं है,
जहाँ कि महेशास्व्य देवता न हों। आनन्द ! देवता परेशान हो रहे हैं—‘हम
तथागतके दर्शनार्थ दूरसे आये हैं। तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध कभी ही कभी
लोकमे उत्पन्न होते हैं। आज ही रातक अन्तिम पहरमे तथागतका परिनिर्वाण होगा।
और यह महेशास्व्य (= प्रतापी) भिक्षु ढाँकते हुये भगवान्के सामने खड़ा है।
अन्तिम समयमें हमे तथागतका दर्शन नहीं मिल रहा है।

(१८६) “भन्त ! भगवान् देवताओंके धारमें कैसे देख रहे हैं ?”

(१८७) “आनन्द ! देवता आकाशको पृथिवी खालकर बाल खोले रो रहे हैं।
हाथ पकळकर चिला रहे हैं। कटे (घुत्त) की भाँति भूमिपर गिर रहे हैं। (यह
कहत) लोट पोट रहे हैं—‘बहुत जल्दी भगवान् निर्वाणको प्राप्त हो रहे हैं। बहुत
शीघ्र सुगा निर्वाणको प्राप्त हो रहे हैं। बहुत शीघ्र चञ्चुमान् (= बुद्ध) लोकमे

आवृष्टन्ति विषट्ठन्ति । “अति खिप्प भगवा । परिनिष्वायिस्सति, अति खिप्पं सुगसो । परिनिष्वायिस्सति, अति खिप्पं चक्षुमा । लोके अन्तरघायिस्सति ।”

या पन देवता धीतरागा, ता सता मम्पजाना अधिवासन्ति “अनिञ्जा सह्वारा त कुतेत्य लम्भाति” ॥

(१८८) ‘पुन्ये भन्ते ! दिमायु वस्सं उरुया भिवखु आगच्छन्ति तथागत दस्सनाय, ते मय लभाम मनाभावानिये व भिवखु दस्सनाय लभाम पयिरूपासनाय । भगवतो पन मय भन्ते ! अद्ययेन न लभिस्साम मनाभावानिये भिवखु दस्सनाय न लभिस्साम पयिरूपासनाया, ति’ ॥

(१८९) चत्तारिमानि आनन्द ! सद्दस्स कुलपुत्तस्स दस्सनियानि संवेजनियानि ठानानि । कतमानि चत्तारि ?

[१] ‘इध तथागतो जातो, ति’ आनन्द ! सद्दस्स कुलपुत्तस्स दस्सनियं संवेजनियं ठान ॥

[२] ‘इध तथागता अनुत्तर सम्पा-सम्भाधि अभिसम्भुद्धा, ति’ आनन्द ! सद्दस्स कुलपुत्तस्स दस्सनिय संवेजनिय ठान ॥

अन्तर्धान हो रहे हैं।’ और जा देवता होश चेतवाल हैं, वह होश चेत स्मृति सप्रजन्त्योक साथ सह रहे है—‘संस्कृत (= कृत वस्तुयें) अनित्य हैं। सा वहाँ मिल सकता है।’

(१८८) “भन्ते । पहिले दिशाओमे वर्षावास कर भिक्षु भगवान्के दर्शनार्थ आते थे । वी मनाभावानीय भिक्षुओंका दर्शन, सत्सग हमें मिलता था । किन्तु भन्ते । भगवान्के बाद हमें मनोभावनीय भिक्षुओंका दर्शन, सत्सग नहीं मिलगा ।

(१८९) “आनन्द । अबकुल कुलपुत्रके लिये यह चार स्थान दर्शनीय, संवेजनीय (= वैराग्यप्रद) हैं । कौनसे चार ? [१] ‘यहाँ तथागत उत्पन्न हुये (= लुम्बिनी)’ यह स्थान अब्बाडु ० । [२] ‘यहाँ तथागतने अनुत्तर मम्यक

[३] 'इध तथागतेन अनुत्तर धम्मचक्र पवत्तितन्ति' आनन्द ! सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनिय संवेजनियं ठान ॥

[४] 'इध तथागतो अनुपादिसेसाय निब्बान-धातुया परिनिब्बुतो, ति' आनन्द ! सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनिय संवेजनिय ठान ॥

इमानि खो आनन्द ! चत्तारि सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनियानि संवेजनियानि ठानानि । आगमिस्सन्ति खो आनन्द ! सद्धा भिक्खु भिक्खुनियो उपासका उपासिकायो, 'इध तथागतो जातोति पि' । 'इध तथागतो अनुत्तर सम्मा सम्बोधिं अभिसम्बुद्धोति पि' 'इध तथागतेन अनुत्तर धम्मचक्र पवत्तितन्ति पि' । 'इध तथागतो अनुपादिसेसाय निब्बान धातुया परिनिब्बुतोति पि' ॥ 'येहि कैचि आनन्द ! चेतिय चारिक आहिण्डन्ता पसन्न चित्ता काल करिस्सन्ति, सब्बे ते कायस्स भेदा पर मरणा सुगतिं सग्ग लोक उपपज्जिस्सन्ती, ति' ॥

(१९०) कथ मयं भन्त ! मातुगामे पटिपज्जामा, ति ?

अदस्सन आनन्दा, ति ॥

दस्सन भगवा ! सति कथ पटिपज्जितञ्चन्ति ?

संशोधिको प्राप्त किया' (= बाधगया) ० । [३] 'यहाँ तथागतने अनुत्तर (= सर्व श्रेष्ठ) धमचक्रको प्रवर्तन किया' (= सारनाथ) ० । [४] 'यहाँ तथागत अनुपादि रोप निवाण धातुनो प्राप्त हुय (= कुर्सीनारा) ० । ० यह चार स्थान दर्शनीय ० हैं । आनन्द ! अट्टालु भिक्षु भिक्षुणियाँ उपासक उपासिकायें (भविष्यमें यहाँ) आवेंगी—'यहाँ तथागत उत्पन्न हुये ' ० 'यहाँ तथागत ० निर्वाण ० को प्राप्त हुये ।'

(स्त्रियोंके प्रति भिक्षुओंका वर्ताव)

(१९०) "मन्ते । स्त्रियोंके साथ हम कैसा वर्ताव करेंगे ?"

"अदर्शी (= न देखना), आनन्द ।"

"इसमें दोनार भगवान् जैसे वर्ताव करेंगे ?"

अनालापो आनन्दा ! ति ॥

आलपन्तेन पन भन्ते ! कथ पटिपञ्जितब्बन्ति ?

सति आनन्द ! उपहापेतब्बाति ॥

(१९१) कथं मयं भन्ते ! तथागतस्स सरीरे पटिपञ्जामाति ?

अन्यावटा तुम्हे आनन्द ! होय तथागतस्स सरीर पूजाय । इह तुम्हे आनन्द ! सारत्ये अनुयुञ्जय सारत्ये अप्पमत्ता आतापिना पहितत्ता विहरय । सन्तानन्द ! खत्थिय पण्डिता पि ब्राह्मण पण्डिता पि गृहपति पण्डिता पि तथागते अभिप्पसन्ना, ते तथागतस्स सरीर पूज करिस्सन्ती, ति ॥

(१९२) कथं पन भन्ते ! तथागतस्स सरीरे पटिपञ्जितब्बन्ति ?

यथा खो आनन्द ! रञ्जो चक्रवत्तिस्स सरीरे पटिपञ्जन्ति, एव तथा तथागतस्स सरीरे पटिपञ्जितब्बन्ति ॥

(१९३) कथं पन भन्ते ! रञ्जो चक्रवत्तिस्स सरीरे पटिपञ्जन्ती, ति ?

‘आलाप (= वात) न करना, आनन्द !’

“जात करनेवालेको कैसा करना चाहिये ?”

“स्मृति (= होश) को सँभाले रखना चाहिये ?”

चक्रवर्तीकी दाहक्रिया

(१९१) “भन्ते ! तथागतके शरीरको हम कैसे करेंगे ?” “आनन्द ! तथागतकी शरीर पूजासे तुम बेपर्वाह रहो । तुम आनन्द सच्चे पदार्थ (= सदर्थ) के लिये प्रयत्न करना, सत् अर्थके लिये उद्योग करना । सत् अथवा अप्रमादी, लक्ष्मी, आत्मसंयमो हो विहरना । हँ, आनन्द ! क्षत्रिय पण्डित भी, ब्राह्मण पण्डित भी, गृहपति पण्डित भी, तथागतमें अत्यन्त अनुरक्त, वह तथागतकी शरीर पूजा करेंगे ।”

(१९२) “भन्ते ! तथागतके शरीरका कैसे करना चाहिये ?” जैसे आनन्द ! राजा चक्रवर्तीके शरीरके साथ करना होता है, वैसे तथागतके शरीरको करना चाहिये ।”

(१९३) “भन्ते ! राजा चक्रवर्तीके शरीरके साथ कैसे किया जाता है ?”

(१९४) रञ्जो आनन्द ! चक्रवत्तिस्स सरीर अहतेन वत्थेन वेठेन्ति । अहतेन वत्थेन वेठेत्वा विहतेन कप्पासेन वेठेन्ति । विहतेन कप्पासेन वेठेत्वा अहतेन वत्थेन वेठेन्ति । एतेनुपायेन पञ्चहि युग सते हि रञ्जो चक्रवत्तिस्स सरीरे वेठेत्वा आयसाय तेल दोणिया पत्रखी पेट्वा अञ्चिस्सा आयसाय दोणिया पटिकुञ्जित्वा सब्ब गन्धान चित्तकं करित्वा रञ्जो चक्रवत्तिस्स सरीर भापेन्ति । चतु महापथे रञ्जो चक्रवत्तिस्स यूप करोन्ति । एव खो आनन्द ! रञ्जो चक्रवत्तिस्स सरीरे पटिपञ्जन्ति ॥ यथा खो आनन्द ! रञ्जो चक्रवत्तिस्स सरीरे पटिपञ्जन्ति, एव तथागतस्स सरीरे पटिपञ्जितम्ब । चतु महापथे तथागतस्स यूपो कातम्बो । तस्य ये मालं वा गन्ध वा चुण्णक वा आरोपेस्सन्ति वा अभिवादेस्सन्ति वा चित्त वा पसादेस्सन्ति । तेस त भविस्समत्ति दीघरत्त हिताय सुखाया, ति ॥

(१९५) चत्तारो मे आनन्द ! यूपारहा । कतमे चत्तारो ?

[१] तथागतो अरह सम्मा सम्बुद्धो यूपारहो । [२] पञ्चेक

(१९४) “आनन्द ! राजा चक्रवर्तीके शरीरके नये वस्त्रसे लपेटते हैं, नये वस्त्रसे लपेटकर धुनी रुईसे लपेटते हैं । धुनी रुईसे लपेटकर नये वस्त्रसे लपेटते हैं । इस प्रकार पाँच सौ जोड़े वस्त्रों से लपेटकर तेलकी लोहट्रोणी (=त्रैन) में रखकर, दूसरी लोह-ट्रोणीमें ढाँककर, सभी गंधों (घाल काष्ठ) की चिता बनाकर, राजा चक्रवर्तीके शरीरको जलाते हैं, जलाकर बल्ले चौरस्ते पर राजा चक्रवर्तीका स्तूप बनाते हैं ।” “वहाँ आनन्द ! जो माला, गंध या चूर्ण चढायेंगे, या अभिवादन करेंगे, या चित्त प्रसन्न करेंगे, तो वह दीर्घ कात तक उनके हित सुखके लिये होगा ।

(१९५) आनन्द ! चार स्तूपार्ह (= स्तूप बनाने योग्य) हैं । कौनसे चार ?

[१] तथागत सम्म्यक् सजुद्ध स्तूप बनाता योग्य है । [२] अन्येक सजुद्ध ० ।

सम्बुद्धो यूपारहो । [३] तथागतस्म भावको यूपारहा, [४] राजा चकवन्ति यूपारहा, ति ॥

किञ्चानन्द ! अन्यवसे पटिष तथागता अहं मग्मा सम्बुद्धो यूपारहो ? अयं तस्म भगवतो अरहतो मग्मा सम्बुद्धस्म यूपोति आनन्द ! यद् जना विष पमादेन्ति, ते तस्य विष पमादेत्वा कायस्म भेदा परं मरणा मुगतिं सगं लोक उपपज्जन्ति । इदं खो आनन्द ! अयं वसं पटिष तथागता अहं मग्मा सम्बुद्धो यूपारहो ॥

किञ्चानन्द ! अत्यरसे पटिष पशेक-सम्बुद्धो यूपारहो ? अयं तस्म भगवता पशेक-सम्बुद्धस्म यूपोति आनन्द ! यद् जना विष पमादेन्ति, ते तस्य विष पमादेत्वा कायस्म भेदा परं मरणा मुगतिं सगं लोक उपपज्जन्ति । इदं खो आनन्द ! अत्यरसे पटिष पशेक-सम्बुद्धो यूपारहो ॥

किञ्चानन्द ! अन्यवसे पटिष तथागतस्म भावको यूपारहा ? अयं तस्म भगवता अरहतो मग्मा सम्बुद्धस्म भावकस्म यूपोति आनन्द ! यद् जना विष पमादेन्ति । ते तस्य विष पमादेत्वा कायस्म भेदा परं मरणा मुगतिं सगं लोक उपपज्जन्ति । इदं खो आनन्द ! अत्य वसे पटिष तथागतस्म भावको यूपारहो ॥

किञ्चानन्द ! अत्यरसे पटिष राजा चकवन्ति यूपारहा ? अयं तस्म धम्मिकस्म धम्मरहस्यो यूपोति आनन्द ! यद् जना विष पमादेन्ति । ते

[३] तथागतस्म भावक (= शिष्य) ० । [४] चरन्ती राजा शान्ति । स्तूप बनाने योग्य है ।

सो वयो आरि ? तथागत अर्हो सम्यक् संबुद्ध स्तुपाहं । यद् वन भगवान् ० संबुद्धका स्तूप है—(सोत्तर) आरि । धम्ममे लोका धित्तके प्रसन्न करगे गित्तमे प्रसन्न कर मरगेके पाद् मुगति स्वर्ग लोकम उपपन्न होंगे । इम प्रयाजनसे आरि ! तथागा ० स्तुपार्हं हैं । ० । किस तिथे आनन्द ! राजा चरन्ती स्तुपार्हं हैं ? आनन्द ।

तस्य चित्तं पसादेत्वा कायस्स भेदा परं मरणा गुगतं सगं लोकं
उपपञ्जन्ति । इदं खो आनन्द ! अत्यवसं पट्टिच्च राजा चक्रवत्ति यूपारहो ।
इमे खो आनन्द ! चत्तारो यूपारहा, ति ॥

(१९६) अथ खो आयस्मा आनन्दो विहारं पविसेत्वा कपिसीसं
आलम्बेत्वा रोदमानो अट्ठासि । 'अहञ्च वतम्हि सेखो स करणीयो ।
सत्थु च मे परिनिब्वान भविस्सति यो मम अनुकम्पको, ति' ॥

(१९७) अथ खो भगवा भिक्खु आमन्तेसि—'कहनु खो भिक्खवे !
आनन्दो, ति ?'

(१९८) एमो भन्ते ! आयस्मा आनन्दो विहारं पविसेत्वा कपिसीसं
आलम्बेत्वा रोदमानो ठितो । 'अहञ्च वतम्हि सेखो स-करणीयो । सत्थु
च मे परिनिब्वान भविस्सति यो मम अनुकम्पको, ति ॥'

(१९९) अथ खो भगवा अञ्जतरं भिक्खु आमन्तेसि,—'एहि त्वं
भिक्खु ! मम वचनेन आनन्दं आमन्तेहि सत्या त आवुसो आनन्द !
आमन्तेती, ति' ॥

यह धार्मिक धर्मराजना स्तूप है, मोच आनन्द । बहुतसे आदमी चित्तको प्रसन्न
करेंगे ० । ० आनन्द । यह चार स्तूपार्ह हैं ।

आनन्द के गुण

(१९६) तत्र आयुष्मान् आनन्द विहारमें जाकर कपिसीस (= खूँटी) का
पत्रलकरा रोते सजे हुए—'हाय । मैं शैश्य = सरणीय हूँ । और जो मेरे अनुवंपक
शास्त्रा हैं, उनका परिनिर्वाण हो रहा है ।'

(१९७) भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—'भिउओ ! आनन्द
कहाँ है ?'

(१९८) 'यह भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द विहार (= कोठरी) में जाकर
रोते सजे हैं ० ।'

(१९९) 'आ ! भिक्षु ! मेरे वचनसे तू आनन्दको कह—'आयुस आनन्द !
शास्त्रा तुम्हें गुला रहे हैं ।' "अञ्जतरं, भन्ते ।"

एवं भन्ते ! ति खो सो भिक्षु भगवतोः पटिस्सुत्वा येनायस्मा
 आनन्दो, तेनुपसङ्गमि । उपसङ्गमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच —
 'सत्या त आवुसो आनन्द ! आमन्तेती, ति' ॥

(२००) एवमावुसो ! ति खो आयस्मा आनन्दो तस्म भिक्षुनो
 पटिस्सुत्वा येन भगवा, तेनुपसङ्गमि । उपसङ्गमित्वा भगवन्त अभिवादेत्वा
 एकमन्त निसीदि ॥

(२०१) एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्त आनन्द भगवा एतदवोच—
 'अलं आनन्द ! मा सोचि, मा परिद्वि । ननु पव आनन्द ! मया पटिरुधेव
 अक्खात सब्बेहेव पियेहि मनापेहि नानाभावो विनाभावो अञ्जयाभावो,
 त कुतेत्य आनन्द ! लब्भा । यन्तं जात भूत सङ्गत पलोक धम्म त वत
 तथागतस्सा पि सरीर मा पलुञ्जी, ति । नेत् ठान विञ्जति ॥ दीघ रत्त
 खो ते आनन्द ! तथागतो पच्चुपट्ठितो मेत्तेन काय कम्मेन हितेन सुखेन
 अद्वयेन अप्पमाणेन, मेत्तेन वची कम्मेन हितेन सुखेन अद्वयेन अप्पमाणेन,
 मेत्तेन मनो कम्मेन हितेन सुखेन अद्वयेन अप्पमाणेन । कर्तं पुञ्जासि त्व
 आनन्द ! पधान मनुयुञ्ज खिप्प होदिसि अनामवो' ति ॥

(२००) आयुष्मान् आनन्दं जहो भगवान् थे व्हो आरर अभिरादनरर
 एक ओर बैठे ।

(२०१) आयुष्मान् आनन्दसे भगवान्ने कथा—

'नहीं आनन्द ! मत शोक करो, मत रोओ । मैंने तो आनन्द ! पहिले हा
 कह दिया है—समी प्रियों = मनापोंसे जुदाई० होनी है, सो वह आनन्द ! कहीं मिला
 वाला है । जो कुछ जात (= उत्पन्न = भूत = मस्कृत है, सो नाश होनेवाला है ।
 'दाय ! वह न नाश हो' यह समय नहीं । आनन्द ! तूने दीर्घरात्र (= चिरकाल)
 तरु अप्रमाण मैत्रापूर्णं कायिक-कर्मस तथागतकी सेवा की है । मैत्रोपूर्णं वाचिक
 कर्मसे ० । ० मैत्रोपूर्णं मानसिक कर्मसे ० । आनन्द ! तू वृत्तपुण्य है । प्रधान
 (= निर्माण-साधन) में लग जन्दी अनास्रव (= मुक्त) हो जा ।'

(२०२) अथ खो भगवा भिक्खु आमन्तेसि—‘ये पि ते भिक्खवे ! अहेसु अतीतमद्धान , अरहन्तो सम्मा सम्बुद्धा, तेसपि भगवन्तानं एतप्परमायेव उपट्ठका अहेसु । सेय्यथा पि, मय्ह आनन्दो । ये पि ते भिक्खवे ! भविस्सन्ति अनागतमद्धान अरहन्तो सम्मा सम्बुद्धा । तेस पि भगवन्तान एतप्परमायेव , उपट्ठका भविस्सन्ति । सेय्यथा पि, मय्ह आनन्दो ॥ परिट्ठतो भिक्खवे ! आनन्दो मेधावी, भिक्खवे ! आनन्दो जानाति अयं, कालो तथागत दस्सनाय उपसङ्कमितु भिक्खून, अय कालो भिक्खुनीन, अय कालो उपासकान, अयं कालो उपासिकानं, अय कालो रज्ज्वा राजमहामत्तान, तित्थियान तित्थिय-सावकानन्ति ॥

(२०३) चत्तारो मे भिक्खवे ! अच्छरिया अब्भुत धम्मा आनन्दे । कतमे चत्तारो ? [१] सचे भिक्खवे ! भिक्खु परिसा आनन्द दस्सनाय उपसङ्कमति दस्सनेन सा अत्तमना होति । तत्र चे आनन्दो धम्म भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति । अतित्ताव भिक्खवे ! भिक्खु-

(२००) तत्र भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

“भिक्षुओ । जो तथागत अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध अतीतकालमें हुए, उन भगवानोके भी उपस्थाक (=चिरसेवक) इतने ही उत्तम थे, जैसा कि मेरा (उपस्थाक) आनन्द । भिक्षुओ । जो तथागत ० भविष्यमें होंगे ० । भिक्षुओ । आनन्द पंडित है । भिक्षुओ । आनन्द मेधावी है । वह जानता है—यह काल भिक्षुओंका तथागतके दर्शनार्थ जाने का है, यह काल भिक्षुणियोंका है, यह काल उपासकोंका है, यह काल उपासिकाओंका है । यह काल राजाका ० राज-महामात्यका ० तैथिकोंका ० तैथिक भावकोंका है ।

(२०३) “भिक्षुओ । आनन्दमें यह चार आश्चर्य अद्भुत बातें (=धर्म) हैं । कौनसी चार ? [१] यदि भिक्षु परिपद् आनन्दका दर्शन करने जाती है, तो दर्शनसे सन्तुष्ट हो जाती है । वहाँ यदि आनन्द धर्मपर भाषण करता है, भाषणसे भी सन्तुष्ट हो जाती है, भिक्षुओ । भिक्षु परिपद् अ-मृप्त ही रहती है, जब कि आनन्द चुप हो

परिसा होति, अय स्वां आनन्दो तुण्दी होति ॥ [२] सचे भिरखवे । भिवरुनि परिसा आनन्दं दस्सनाय उपसङ्गमति, दस्सनेन सा अत्तपना होति । तत्र च आनन्दो धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तपना होति । अतिचाव भिरखवे । भिवरुनि परिसा होति, अय स्वां आनन्दा तुण्दी होति ॥ [३] सचे भिरखवे । उपासक-परिमा आनन्दं दग्गनाय उपसङ्गमति, दस्सनेन सा अत्तपना हाति । तत्र च आनन्दो धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तपना होति । अतिचाव भिरखवे । उपासक परिमा होति, अय स्वां आनन्दा तुण्दी होति ॥ [४] सचे भिरखवे । उपासिक परिमा आनन्दं दस्सनाय उपसङ्गमति, दग्गनेन सा अत्तपना होति । तत्र च आनन्दा धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तपना होति । अतिचाव भिरखवे । उपासिक परिमा होति, अय स्वां आनन्दा तुण्दी होति ॥ इमे स्वां भिवखवे । चत्तारो अरुणिया अद्भुत धम्मा आनन्द ।

(२०४) चत्तारा मे भिवखवे । अरुणिया अद्भुत धम्मा रङ्गवे चकवर्ताम्ह । कतमे चत्तारा ?

जाना हे । [२] यदि भिक्षुणो-परिषद् ० । [३] यदि उपामक-परिषद् ० । [४] यदि उपामिका परिषद् ० । भिक्षुआ । यह चार ० ।

चक्रवर्ती के चार गुण

(२०४) "भिक्षुआ । चक्रवर्ती राजाम यह चार आरचये, अद्भुत भाते हैं । पीनमी चार ? [१] यदि भिक्षुआ । क्षत्रिय-परिषद् चक्रवर्ती राजाका दर्शन करे जाती है, ता दर्शनमे स-तुष्ट हो जाती है । वहाँ यदि चक्रवर्ती राजा भाषण करता है, ता भाषणसे सन्तुष्ट हो जाती है, और भिक्षुआ । क्षत्रिय परिषद् अ-नृप्र ही रहती है, जत्र कि चक्रवर्ती राजा चुप हाता है । [२] यदि ब्राह्मण-परिषद् ० । [३] यदि गृहपति-परिषद् ० । [४] यदि भगव-परिषद् ० । इसी प्रकार भिक्षुआ । यह चार आरचये, अद्भुत भाते आर-दम हैं । [१] यदि भिक्षु-परिषद् ० । ० । भिक्षुआ । यह चार आरचये अद्भुत भाते आनन्दमे हैं ।

[१] सचे भिक्खवे ! खत्तिया-परिसा राजान चक्खवत्ति दस्सनाय
 उपसङ्कमति, दस्सनेन सा अत्तमना होति । तत्र चे राजा चक्खवत्ति
 भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति । अत्तित्ताव भिक्खवे !
 खत्तिय परिसा होति, अथ खो राजा चक्खवत्ति तुएही होति ॥
 (२३-४) सचे भिक्खवे ब्राह्मण-परिसा, गहपति-परिसा, समण-परिसा,
 राजान चक्खवत्ति दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन सा अत्तमना
 हाति । तत्र चे राजा चक्खवत्ति भासति, भासितेन पि सा अत्तमना
 होति । अत्तित्ताव भिक्खवे ! । ० । समण-परिसा होति, अथ खो
 राजा चक्खवत्ति तुएही होती' ति ॥ एवमेव खो भिक्खवे ! चत्तारो मे
 अच्चरिया अभुत धम्मा आनन्दे । सचे भिक्खवे ! भिक्खु परिसा
 आनन्द दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन सा अत्तमना होति । तत्र चे
 आनन्दो धम्म भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति । अत्तित्ताव
 भिक्खवे ! भिक्खु परिसा होति, अथ खो आनन्दो तुएही होति ।
 सच भिक्खुनि परिसा, उपासक-परिसा, उपासिक-परिसा आनन्द दस्स-
 नाय उपसङ्कमति, दस्सनेन सा अत्तमना होति । तत्र चे आनन्दो
 धम्म भासति, भासितेन पि सा अत्तमना हाति । अत्तित्ताव भिक्खवे !
 उपासिक परिसा होति, अथ खो आनन्दो तुण्ही होति ॥ इमे खो
 भिक्खवे ! चत्तारो अच्चरिया अभुत धम्मा आनन्द ति' ॥

(२०५) एव वुत्ते आयस्सा आनन्दो भगवन्त एतदवोच—“मा भन्ते !
 भगवा इमस्मिं खुद्दक-नगरके उज्जल्ल-नगरके साख-नगरके परिनिव्वायि !
 सन्ति भन्ते ! अञ्चानि महा नगरानि, सेव्यधिद—चम्पा, राजगह,

(२०५) आयुध्मान् आनन्दन भगवान्से यह कहा—“भन्ते । मत इम खुद्द
 नगले (=नगरक) मे, जगली नगलेमे शाखा नगरकमे परिनिर्वाण्णे प्राप्त होवें ।
 भन्ते । और भी महानगर हैं, जैसे किचम्पा, राजगृह, धायस्ती, साकेत, कोशाम्भी,

सावत्थी, सादेन, कोसम्भी, वाराणसी; पत्य भगवा ! परिनिम्बातु ॥
 पत्य बहु ग्वत्तिय महासाला ग्राह्यण महासाला गहपति-महासाला तथागतं
 अपिप्पसन्ना । न तथागतस्स सरीरञ्ज करिस्सन्ती' ति ॥,

(२०६) मा हेव आनन्द ! अबच, मा इव आनन्द ! अबच, 'पुरक
 नगरकं, उज्जयिणी नगरकं, साख नगरकन्ति' । भूतपुञ्च आनन्द ! राजा
 महासुदस्सनो नाम अहोसि चणवत्ति पम्मिको पम्म-राजा चातुरन्तो
 विजितावी जनपदत्यावरियप्पत्ता सत्त रत्तन ममआगतो । रज्जा
 आनन्द ! महासुदस्सनस्स अयं कुसिनारा कुसावती नाम राजधानी
 अहासि । पुरत्थियेन च पच्छिमेन च द्वादस योजनानि आयायेन ।
 उत्तरेन च दक्खिणेन च मत्त योजनानि वित्थारंन । कुसावती आनन्द !
 राजधानी इद्धाचेव अहोसि कित्ता च बहु जना च आकिण्ण मनुस्सा च
 सुभिवत्था च । सेय्यया पि,—आनन्द ! देवान आलकमन्दा नाम

वाराणसी । वहाँ भगवान् परिनिर्वाण कर । वहाँ बहुमे क्षत्रिय महाराजा (= महा
 धनी), ब्राह्मण-महाराज, गृहपति महाराज तथागतके भक्त हैं, वह तथागताके शरीरकी
 पूजा करेंगे ।”

महासुदर्शनजातक

(२०६) “मत्त आनन्द ! एमा कह, मत्त आनन्द । एसा कह—‘इम सुद
 नगले ० ।’ आनन्द ! पूर्वकालम महासुदर्शन नामक पारो दिशाओका विजेता,
 देशोंपर अधिकार प्राप्त, मात रत्तासे युष् धार्मिक धर्मराज चणवती राजा था ।
 आनन्द ! यह कुन्तीराज राजा महासुदर्शनकी कुशावती नामक राजधानी थी । जो
 कि पूर्व पश्चिम लम्बाइम वारह योजन थी, उत्तर-पश्चिम दिशाओंमें सात योजन थी ।
 आनन्द ! कुशावती राजधानी समृद्ध=स्फीत, बहुजना=जनाकीर्ण और सुभिक्ष थी ।
 जैसे कि आनन्द ! देवताआकी आलकमन्दा नामक राजधानी समृद्ध=स्फीत, बहु

राजठानी इद्धाचेव होति फिता च बहुजना च आफिएण यक्खा च सुभिक्खा च । एवमेव खो आनन्द ! कुसावती राजठानी इद्धाचेव अहोसि, फिता च बहुजना च आफिएण मनुस्सा च सुभिक्खा च ॥ कुसावती आनन्द ! राजठानी दस हि सहे हि अविचा अहोसि दिवा चेव रत्ति, च ।, सेय्यधिद—हत्थि सहेन, अस्स सहेन, रथ सहेन, भेरि सहेन, मुदिङ्ग सहेन, विणा सहेन, गीत सहेन, सद्द सहेन, सम्प सहेन, ताल सहेन, अस्नाय पिवथ खादया' ति दसमेन सहेन ॥

(२०७) गच्छ त्व आनन्द ! कुसिनाराय पविसित्वा कोसिनारकान मल्लान आरोचेहि ।—“अङ्ग खो वासिद्धा ! रत्तिया पच्छिमे यामे तथागतस्स परिनिब्बानं भविस्सति । अभिक्खमथ वासिद्धा ! अभिक्खमथ वासिद्धा ! मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहु वत्थ अम्हाक च नो गामखेचे तथागतस्स परिनिब्बान अहोसि । न मय लभिम्हा पच्छिमे काले तथागत दस्सनाया' ति” ॥

(२०८) एव भन्ते । ति खो आयस्मा आनन्दो गगवतो पटिस्सुत्वा निवासत्वा पत्त चीवर मादाय अत्तदुतियो कुसिनार पाविसि । तेन खो

जना=यक्ष-आकीर्ण और सुभिक्त हैं, इसी प्रकार ० । आनन्द । कुसावती राजधानी दिन-रात, हस्ति-शब्द, अश्व शब्द, रथ-शब्द, भेरी शब्द, मृदंग-शब्द, वीणा-शब्द, गीत शब्द, शर शब्द, ताल-शब्द, 'स्नाइये पीजिये'—इन दस शब्दोंमें गन्ध न होती थी ।

(२०७) आनन्द । कुसिनाराय जाकर कुसिनारावासी मल्लोंको यह—‘वाशिष्ठो । आन रातके पिछले पहर तथागतका परिनिर्वाण होगा । चने वाशिष्ठो । चना वाशिष्ठो । पीछे अफसोस मन करना—‘हमारे ग्राम क्षेत्रमें तथागतका परिनिर्वाण हुआ, लेकिन हम अन्तिमकालमें तथागतका दर्शन न कर पाये ।’

(२०८) “अच्छा भन्ते ।” आयुधान् आनन्द चीवर पहिनकर, पायचीर ले, अकेले ही कुसिनारामें प्रविष्ट हुए । उस समय कुसिनारावासी मल्ल किसी कामसे

एन समयेन कोसिनारका मल्ला सन्धागारे^{*} सन्नपतिता ह्येन्ति
 रेनचि देव करणीयंन । अय खो आयस्मा आनन्दा येन कोसिना
 कान मल्लान सन्धागार, तेनुपसङ्गमि । उपसङ्गमित्वा कोसिनारकान
 मल्लान आगचेसि,—“अज्ज खो वासिह्ठा ! मत्तिया पच्चिमे याम
 तथागतस्स परिनिब्वान भविस्सति । अभिवग्गमय वासिह्ठा ! अभिक्खमय
 वासिह्ठा ! मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहु वत्थ अग्हाक च नो गामखेत्ते
 तथागतस्स परिनिब्वान अहोसि । न मय न्भिम्हा पच्चिमे कातो
 तथागत दस्सनाया’ ति” ॥

(२०९) इदमायस्पती आनन्दस्स सुत्वा मल्ला च मल्लपुत्ता च मल्लसुगिप्पा
 च मल्लपजापतियो च अपाविनो दुम्मना चेतो दुक्खसमपिप्ता अप्प कच्च
 म्से पफिरिय कन्दन्ति चाहा पग्गद्द कन्दन्ति द्विन्नपात् पपत्तित्ति
 आवट्टित्ति विवट्टन्ति—“अति विप्प भगवा ! परिनिब्वायिस्सति । अति
 विप्प सुगतो ! परिनिब्वायिस्सति । अति खिप्प चक्खुमा ! लोक
 अतरधायिस्सती’ ति” ॥

सन्धागारम जमा हुए थे । तत्र आयुष्मान् आनन्द जहाँ कुसीनाराके मल्लोका
 मन्धागार था, वहाँ गये । जाकर कुसीनाराकामो मल्लोस यह बोला—‘वाशिष्ठो ! ० ।’

(२०९) आयुष्मान् आनन्दसे यह सुत्तर मल्ल, मल्लपुत्र, मल्लवधुये, मल्ल
 भार्यायें दुःखित दुर्मना दुःखसमर्पित चित्त हो, कौड़े कौई बालोको निखेर रोत थे, बाँहें
 पकळसर ब्रँदन करत थे, कटे (घृत्त) से गिरत थे, (भूमिपर) लोटते थे—बहुत जन्दी
 भगवान् निर्माण प्राप्त हो रहे हैं, बहुत जन्दी सुगत निर्माण प्राप्त हो रहे हैं ० । बहुत
 जन्दी लोक चक्षु अन्तर्धान हो रहे हैं । तत्र मल्ल ० दुःखित ० हा, जहाँ उपवत्तन
 महात्मा शालवन था, वहाँ गये ।

* ‘सन्धागारे भी पाठ है ।

(२१३) तेन खो पन समयेन सुभदो नाम परिब्बाजको कुसिनाराय पटियसति । अस्सोसि खो सुभदो परिब्बाजको “अज्ज किर रत्तिया पच्छिमे यामे सपणस्स गोतमस्स परिनिब्बान भविस्सती, ति । अय खो सुभदस्स परिब्बाजकस्स एतददोसि ‘सुत्तं खो पन मे त परिब्बाजकान बुद्धानं महल्लकान आचरिय पाचरियानं भासमानान—कदाचि करहचि तथागता लोके उप्पज्जन्ति अरहन्तो सम्मा सम्बुद्धा । अज्जेव रत्तिया पच्छिमे यामे सपणस्स गोतमस्स परिनिब्बान भविस्सति । अत्थि च मे अय कङ्गा धम्मो उप्पन्नो । एव पसन्नो अहं समणे गोतमे । पदोत्ति मे सपणो गोतमो तथा धम्मं दसेतु, यथाह इमं कङ्गा धम्मं पज्जेयन्ति” ॥

(२१४) अय खो सुभदो परिब्बाजको येन उपवचनं महानं सालवनं, येनायस्मा आनन्दो, तेनुपसङ्गमि । उपसङ्गमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—“सुत्तं मे तं भो आनन्द ! परिब्बाजकानं बुद्धानं महल्लकानं आचरिय पाचरियानं भासमानान,—कदाचि करहचि तथागता लोके उप्पज्जन्ति अरहन्तो सम्मा सम्बुद्धा । अज्जेव रत्तिया पच्छिमे यामे

सुभद्रकी प्रवचनिका

(२१३) उस समय कुमीनागम सुभद्र नामक परित्राजक वाम करवा था । सुभद्र परित्राजकने सुना, आज रातको पिछले पहर भ्रमण गौतमरा परिनिर्वाण होगा । तब सुभद्र परित्राजकको ऐसा हुआ—‘मैंने तुम्हें—महल्लक आचार्य प्राचार्य परित्राजकोंको यह कहते सुना है—‘कदाचि कभी ही तथागत अर्हन् सम्बन् सम्बुद्ध उत्पन्न हुआ करते हैं ।’ और आज रातके पिछले पहर भ्रमण गौतमरा परिनिर्वाण होगा, और मुझे यह सशय (=करवा धम्म) उत्पन्न है, इस प्रकार मैं भ्रमण गौतममें प्रसन्न (=श्रद्धावान्) हूँ—भ्रमण गौतम मुझे वैसा, धर्म उपदेश कर सक्ता है, जिसने मेरा यह सशय दूर जायेगा ।’

(२१४) वन सुभद्र परित्राजक जहाँ महाना शाकल्य उपवचन था, जहाँ आयुष्मान् आतां दे, वहाँ गया । जाकर आयुष्मान् आनन्दसे बोला—‘दे

समणस्स गोतमस्स परिनिब्वान भविस्सति । अरिय च मे अयं कङ्खा-
धम्मो उप्पन्नो । एव पसन्नो अह समणे गोतमे तथा धम्म देसेतु,
यथाह इम कङ्खा-धम्म पजहेत्थ । साधाह भो आनन्द ! लभेत्थ
समण गोतम दस्सनाया, ति” ॥

(२१५) एव वुत्ते आयस्मा आनन्दो सुभद परिब्वजक एतदवोच—
“अल आवुसो सुभद ! मा तथागत विहेठेसि । किलन्तो भगवा, ति” ॥
दुतियम्पि खो सुभदो परिब्वजको० । ततियम्पि खो सुभदो परि-
ब्वजको आयस्मन्त आनन्द एतदवोच “सुत म त भो आनन्द ! परि-
ब्वजकान वुद्धान महल्लकान आचरिय-पाचरियान भासमानान,—‘कदाचि
करहचि तथागता लोके उप्पज्जन्ति अरहन्तो सम्मा सम्बुद्धा’ । अज्जेव
रत्तिया पच्छिमे यामे समणस्स गोतमस्स परिनिब्वान भविस्सति । अरिय
च मे अयं कङ्खा-धम्मो उप्पन्नो । एव पसन्नो अह समणे गोतमे प्होति
मे समणो गोतमो तथा धम्म देसेतु, यथाह इम कङ्खा-धम्म पजहेत्थ ।
साधाह भो आनन्द ! लभेत्थ समण गोतम दस्सनाया, ति” ।
ततियम्पि खो आयस्मा आनन्दो सुभद परिब्वजक एतदवोच—“अल
आवुसो सुभद ! मा तथागत विहेठेसि । किलन्तो भगवा, ति ॥”

(२१६) अस्सोसि खो भगवा आयस्मतो आनन्दस्स सुभदेन परि-
ब्वजकेन सद्धि इम कथा सत्लाप । अय खो भगवा आयस्मन्त आनन्द

आण्ड । मैने वृद्ध = महल्लक० परिव्राजकाको यह कहते सुना है० । सा मैं
श्रमण गौतमका दर्शन पाऊँ ?”

(२१५) ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने सुभद्र परिव्राजकसे कहा—

“नहां आवुम सुभद्र ! तथागतको तरलीफ मत दा । भगवान् थके हुए हैं ।”
दूसरी बार भी सुभद्र परिव्राजकने ० । ० । तीसरी बार भी ० । ० ।

(२१६) भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दका सुभद्र परिव्राजकके साथका कथा
सलाप सुन लिया ।

आनन्दने कहा—

आपन्तेसि—“अल आनन्द ! मा सुभद वारेसि । लभतं आनन्द ! सुभदो तथागत दस्सनाय । य किञ्चि मं सुभदो पुच्छिस्सति, सञ्चन्तं अञ्जा पेक्खोव पुच्छिस्सति, नो विहेसापेखो । यञ्चस्साह पुट्ठो व्याकरिस्सामि, त खिप्पमेव आजानिस्सती, ति” ॥

(२१७) अथ खो आयस्मा आनन्दो सुभद परिब्बाजरू एतदवोच—
“गच्छाधुसो सुभद ! करोति ते भगवा ओकासन्ति ” ॥

(२१८) अथ खो सुभदो परिब्बाजको येन भगवा, तेनुपसङ्गमि । उपसङ्गमित्था भगवता सद्दि सम्मोदि । सम्मोदनीयंकथ सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्त निसीदि । एकमन्तं निसिन्नो रया सुभदो परिब्बाजको भगवन्त एतदवोच—

(२१९) “ये मे भो गोतम ! समण ब्राह्मणा सद्दिनो गणिनो गणा चरिया आता यस्सिस्सना तित्थकरा साधु सम्पता बहु जनस्स । संय्ययिद—पूरणो कस्सपो, मक्खलि गोसालो, अजितो केस,

“नहीं आनन्द ! मत सुभद्रको मना करो । सुभद्रको तथागतका दर्शन पान वे । जो कुछ सुभद्र पूछेगा, वह आज्ञा (= परम ज्ञान) की इच्छासे ही पूछेगा, तत्कालिक देनेकी इच्छासे नहीं । पूछनेपर जा मैं उस कहूँगा, उसे वह जल्दी ही जान लगा ।”

(२१७) तत्र आयुष्मार आगन्तु सुभद्र परिभाजरूगे कथा—

“जागो आयुस सुभद्र । भगवार् तुम्हे आज्ञा वेते में ।”

(२१८) तत्र सुभद्र परिनाजरू जहाँ भगवान् वे, वहाँ गया । जाकर भगवान्के साथ सम्मोदनर एक ओर बैठा । एक ओर बैठ बोला ।

(२१९) “हे गोतम ! जो समण ब्राह्मण सगो गणी = गणाचार्य, प्रसिद्ध यशस्वी तीर्थंकर, बहुत लोगो द्वारा उत्तम माने जानेवाले हैं, जैसे कि—पूर्य काश्यप, मक्खलि गोसाल, अजित कश्कमल, पशुध काश्यायन, सजय नेलट्ठिपुत्त

कम्पलो, पकुधो कच्चायनो, सञ्जयो वेलट्टपुत्तो, निगण्ठो नाटपुत्तो, सब्बे ते सकाय पटिञ्जाय अब्भञ्जिसु । सब्बेव न अब्भञ्जिसु । उदाहु एकस्स अब्भञ्जिसु । एकस्सो न अब्भञ्जिसु, ति” ।

(२२०) अल सुभद ! तिष्ठते त । सब्बे ते सकाय पटिञ्जाय अब्भञ्जिसु । सब्बेव न अब्भञ्जिसु । उदाहु एकस्स अब्भञ्जिसु । एकस्सो न अब्भञ्जिसु, ति ॥ धम्म ते सुभद ! देसिस्सामि । त सुणाहि साधुक मनसि करोहि । भासिस्सामी, ति ॥

(२२१) एव भन्ते ! ति खो सुभदो परिव्वाजको भगवतो पचस्तोसि ॥

भगवा एतदवोच—“यस्मिं खो सुभद ! धम्म विनये अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो न उपलब्भति, समणो पि तत्थ न उपलब्भति । दुतियो पि तत्थ समणो न उपलब्भति । ततियो पि तत्थ समणो न उपलब्भति । चतुत्थो पि तत्थ समणो न उपलब्भति ॥ यस्मिं च खो सुभद ! धम्म

निगण्ठ नाथपुत्त । (म्या) वह सभी अपन दावा (= प्रतिज्ञा) का (वैसा) जानते, (या) सभी (वैसा) नहीं जानते, (या) कोई कोई वैसा जानते, कोई कोई वैसा नहीं जानते हैं । ”

(२२०) “नहीं सुभद्र ! जान दो—‘वह सभी अपने दावाको ० । सुभद्र ! तुम्हे धर्म ० उपदेश करता हूँ, उसे सुनो, अच्छी तरह मनम करा, भाषण करता हूँ ।”

(२२१) “अच्छा भ ते !” सुभद्र परिवाजकने भगवान्‌मे कहा । भगवान् ने यह कहा—

“सुभद्र ! जिस धर्म विनयम आर्य अष्टांगिक मार्ग उपलब्ध नहा हो ता, वहाँ प्रथम श्रमण (= श्रोता श्रमण) भी उपलब्ध नहा होता, द्वितीय श्रमण (= सट्टदागामी) भी उपलब्ध नहा होता, तृतीय श्रमण (= अनागामी) भी उपलब्ध नहा होता, चतुर्थ श्रमण (= अर्हत्) भी उपलब्ध नहीं होता । सुभद्र ! जिस धर्म विनयमे आर्य अष्टांगिक मार्ग उपलब्ध हाता है, प्रथम श्रमण भी वहाँ होता है ० । सुभद्र ! इस

० अ क “पहिले पहरमें मल्लोको धर्मदेशनाकर, रिचले पहर सुभद्रको, पिछला पहर भिन्नु उपको उपदेशकर, बहुत भोरे ही परिशिषांण

विनये अग्न्या अष्टङ्गिको भग्नो उपलब्धति समणो पि तस्य उपलब्धति ।
 दुतिया पि तस्य समणो उपलब्धति । ततियो पि तस्य समणो उपलब्धति ॥
 चतुत्थो पि तस्य समणो उपलब्धति । इगस्मि खो गुभद ! धम्म
 विनये अरियो अष्टङ्गिको भग्नो उपलब्धति, इधेय सुभद ! समणो ।
 इध दुतियो सगणो । इध ततियो समणो । इध चतुत्थो समणो ।
 सुब्ब परप्पवादा समणे हि अब्बे हि । इधेव सुभद ! भिक्खू सम्मा
 विहरय्यु असुब्बो लोको अरहन्ते हि अस्साति । एकूनत्तिसो वयसा
 गुभद ! य पच्चजि किं कुसलानुपमी । उस्सानि पच्चास ममधिकानि,
 यतो अह पच्चजिता गुभद ! जायस्स धम्मस्स पदसवत्ति । इता
 उहिद्धा समणो पि नत्थि । दुतियो पि समणो नत्थि । ततियो पि
 समणो नत्थि । चतुत्थो पि समणो नत्थि सुब्बा परप्पवादा सगणे हि
 अब्बे हि । इमे च गुभद ! भिक्खू सम्मा विहरय्यु असुब्बो लोको
 अरहन्त हि अस्साति” ॥

(२२२) एवं वुत्ते सुभदो परिन्वाजको भगवन्त एतदयोच । “अभिवन्त
 भन्ते ! अभिवन्त भन्ते ॥ सेय्यया पि भन्ते ! निक्कुञ्जित वा उवकुञ्जेय्य,
 पटिच्छन्न वा विवरय्य, मुदहस्स वा भग्न आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा
 धर्म विनयम आर्ये अशोणिकु मार्ग उपलब्ध हाता हे, सुभद । यहाँ प्रथम श्रमण ० भी,
 यहाँ ० द्वितीय श्रमण भी, यहाँ ० तृतीय श्रमण भी, यहाँ ० चतुर्थ श्रमण भी है ।
 दूसरे वाद (= मत) श्रमणस शून्य हैं । सुभद ! यहाँ (यदि) भिक्षु ठीकसे विहार
 करें (तो) लोक अर्हतास शून्य न होवे ।”

“सुभद ! अन्तीस वर्षकी अवस्था म बुद्धता (= पुण्यधर्म)का खाजो हो, जो मैं
 प्रमजित हुआ ।

सुभद ! जर मैं प्रमजित हुआ तनसे इनावन वर्ष हुए ।

न्याय धर्म (= आर्य धर्म = सत्यधर्म) के एक देशको भी देखनेवाला यहाँसे
 बाहर कोई नहीं है ।

(२२२) ऐसा कहनेपर सुभद पगिमाजसन् भगवान्से कहा—

तेल-पञ्जोत धारय्य, चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ति, एवमेव भगवता अनेक परियायेन धम्मो पक्कासितो । एसाह भन्ते ! भगवन्त सरण गच्छामि धम्मञ्च भिक्खु संघञ्च । लभेय्याह भन्ते ! भगवतो सन्तिके पब्बञ्ज । लभेय्य उपसम्पदन्ति” ॥

(२२३) यो खो सुभद ! अञ्ज तित्थिय पुब्बो इमस्सिं धम्म विनये आकह्वति पब्बञ्ज आकह्वति उपसम्पद, सो चत्तारो मासे परिवसति । चतुन्न मासान अद्येन आरद्ध चित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति उपसम्पादेन्ति भिक्खु-भावाय । अपि च मेत्थ पुग्गल वेमत्तता विदिता, ति ।

(२२४) सचे भन्ते ! अञ्जतित्थिय पुब्बा इमस्सिं धम्म-विनये आकह्वन्ता पब्बञ्ज आकह्वन्ता उपसम्पद चत्तारो मासे परिवसन्ति । चतुन्न मासान अद्येन आरद्ध चित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति उपसम्पादेन्ति भिक्खु-भावाय । अह चत्तारि वस्सानि परिवसिस्सामि । चतुन्न वस्सान अद्येन आरद्ध चित्ता भिक्खू पब्बाजेन्तु उपसम्पादेन्तु भिक्खु भावाया, ति ॥

“आश्चर्य्यं भन्ते । अद्भुतं भन्त । ० मैं भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी । भन्ते ! मुझे भगवान्के पाससे प्रणय्या मिले, उपसंपदा मिले ।”

(२२३) “सुभद्र ! जो कोई भूतपूर्व गायत्रीविक (=दृसरे पयका) इस धर्म मे प्रणय्या उपसंपदा चाहता है वह चार मास परिवास (=परीक्षार्थ वाम) करता है । चारमास के बाद, आरंभ चित्त भिक्षु प्रव्रजित करते हैं, भिक्षु होनेके लिये उपसंपन्न करते हैं ।”

(२२४) “भन्ते ! यदि भूतपूर्व अन्यतीर्थिक हम धर्मविनयमे प्रणय्या ० उपसंपदा चाहनेपर, चार मास परिवास करता है ०, तो भन्ते । मैं चार वर्ष परि वाम रहूँगा । चार वर्षके बाद आरंभ चित्त भिक्षु मुझे प्रव्रजित करेंगे ।”

(२२५) अथ स्या भगवा आपस्मत्त आनन्द आपन्तेसि ।

तेनहानन्द ! सुभद्र पञ्चजेही, मि ॥

एवं भन्ते ! तिरा आपस्मा आनन्दो भगवता पचस्मांसि ॥

(२२६) अथ स्या सुभद्रा पञ्चिजानको आयम्पन्न आनन्दे
एतद्वोच—“लाभा वा आयुसा आनन्द ! गुलटं वो आयुसो आनन्द ॥

ये पत्य मत्पु संग्रामा शन्तेरामिकाभिसक्तेन अभिगिष्ताति ॥

(२२७) अतएव सो सुभद्रो परिञ्चानको भगवतो गन्तिरे पचञ्ज,
अतएव उपमम्पद् । अतिरूपमम्पन्ने सो पनायस्मा सुभद्रा एकायूपकठो
अप्यमचो आतापी पदितचो विहरन्तो न चिरस्मव यस्मत्याय
कुलपुत्रा सम्मदय अगारस्मा अनगारियं पचनन्ति । तदनुत्तरं
ब्रह्मचरिय परियोमान दिद्वेय धम्मे सयं अभिष्या सच्चि क्त्वा
उपमम्पञ्ज विहामि । स्त्रीणा गाति । वुसित ब्रह्मचरिय । कते
करणीय । नापर इत्यत्ता याति अच्यञ्जासि । अच्यतरां सो
पनायस्मा सुभद्रो अरहच अहोगि । सो भगवतो पच्छिमो
सम्भिव सावको अहोसी, ति ॥

भाणवार पञ्चम ॥ ५ ॥

(२२५) तव भगवान्ते आयुष्मार आनन्दे कदा—“वो आनन्द ! सुभद्रसो
प्रप्रजित करो ।” “अच्छा भन्ते ।”

(२२६) तत्र सुभद्र परिगाजरको आयुष्मान् आनन्दो कदा—

‘आयुस ! ताभ है तुम्ह, सुनाभ हुआ तुम्हें, जो यहाँ शास्तारे सम्मुख
अपनामी (= शिष्य) के अभिप्रेरमे अभिपिस्त हुए ।’

(२२७) सुभद्र परिभाजकने भगवान्के पास प्रप्रज्या पाई, उपसंपदा पाई ।
उपसंपन्न होनेसे अचिरहीन आयुष्मान् सुभद्र आत्मसयमी हो विहार करते, जन्दी
ही, जिसने तिये कुलपुत्र ० प्रनजित होते हैं, उस अनुत्तर ब्रह्मचर्यकालको इसी जन्म
म स्वयं जानकर, साक्षात्कारकर, प्राप्तकर, विहरने लगे । ० । सुभद्र अर्हतामेंसे एक
हुए । वह भगवान्के अन्तिम शिष्य हुए ।

(इति) पचम भाणवार ॥ ५ ॥

(२२८) अथ खो भगवा आयस्मन्त आनन्द आमन्तेसि—“सिया खो पनानन्द ! तुम्हाक [१] एवमम्म अतीत सत्युक पावचन नत्थि नो सत्या, ति । न खो पनेत आनन्द ! एव दद्वब्ब । यो वो आनन्द ! मया धम्मो च विनयो च देसितो पञ्चत्तो, सो वो ममच्चयेन सत्या, ति ॥ [२] यथा खो पनानन्द ! एतरहि भिक्खु अञ्च मञ्च ‘आवुसो’ वादेन समुदाचरन्ति । न खो ममच्चयेन एव समुदाचरितब्ब । थेर-त्तरेन आनन्द ! भिक्खुना नवकत्तरो भिक्खु नामेन वा गोत्तेन वा आवुसो वादेन वा समुदा चरितब्बो । नयकत्तरेन भिक्खुना थरत्तरो भिक्खु भन्ते’ ति वा ‘आयस्मा’ ति वा समुदा चरितब्बो ॥ [-३]—आकङ्कमानो आनन्द ! सधो ममच्चयेन खुद्धानुखुद्दकानि सिक्खवापदानि समुद्दनतु ॥ [४]—सत्तस्स आनन्द ! भिक्खुनो ममच्चयेन ब्रह्म-दण्डो दात्तब्बो, ति” ॥

(२२९) कतमो पन भन्ते ! ब्रह्मदण्डो, ति ?

अन्तिम उपदेश

(२२८) तत्र भगवान्ने आयुष्मार् आनन्दसे क्हा—

“आनन्द ! शायद तुमको ऐसा हो—[१] अतीत शास्ता (= चले गये गुरु) का (यह) प्रवचन (= उपदेश) है, (अथ) हमारा शास्ता नहीं है । आनन्द ! इमे ऐसा मत समझना । मैं जो धर्म और विनय उपदेश किये हूँ, प्रज्ञप्त (= विहित) किये हैं, मेरे बाद यही तुम्हारा शास्ता (= गुरु) है ।—[२] आनन्द ! जैसे आजकल भिक्षु एक दूसरेको ‘आवुस’ कहकर पुकारते हैं, मेरे बाद ऐसा कहकर न पुकारें । आनन्द ! स्वयंस्तर (= उपसपदा प्रश्रयामें अधिक दिनरा) भिक्षु नवक-तर (= अपने-से कम समयके) भिक्षुको नामसे, या गोत्रसे, या आवुस, कहकर पुकार । नवक तर भिक्षु स्वयंस्तरको ‘भन्ते’ या ‘आयुष्मान्’ कहकर पुकारें । [३] इच्छा होयेपर संग मेरे बाद सुद्र अनुसुद्र (= छोटे छोटे) शिक्षापदों (= भिक्षुनियमों)को छोड़ दे । [४] आनन्द ! मेरे बाद छत्र भिक्षुको ब्रह्मदण्ड करना चाहिये ।”

(२२९) “भन्ते ! ब्रह्मदण्ड क्या है ?”

(२३०) छद्मो आनन्द ! भिक्खु य इच्छेय्य तं वदेय्य, मो भिक्खु हि नेय वत्तञ्चो, न श्रोवदित्तञ्चो, न अनुमासित्तञ्चो, ति ॥

(२३१) अथ खो भगवा भिक्खु आमन्तेसि—“सिया खो पन भिक्खवे ! एक भिक्खुस्स पि कङ्गा वा विमति वा पुट्ठे वा धम्मे वा संघे वा मग्गे वा पटिपदाय वा । पुच्छय भिक्खवे ! मा पच्छा विप्पटिमाग्गिनो अहुवत्थ समुखी भूतो नो सत्या अहोसि । न मय सखिलम्हा भगवन्त समुखा पटिपुच्छित्तुन्ति ॥

(२३२) एव वुत्ते ते भिक्खु तुएही अहेसु । ततियम्पि खो भगवा भिक्खु आमन्तेसि ।—“सिया खो पन भिक्खवे ! एक भिक्खुस्स पि कङ्गा वा विमति वा पुट्ठे वा धम्मे वा संघे वा मग्गे वा पटिपदाय वा । पुच्छय भिक्खवे ! मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ समुखी भूतो नो सत्या अहोसि । न मय सखिलम्हा भगवन्त समुखा पटिपुच्छित्तुन्ति” । ततियम्पि खो ते भिक्खु तुएही अहेसु । अथ खो भगवा भिक्खु आमन्तेसि—“सिया खो पन भिक्खवे ! सत्थु गारवेन पि न पुच्छेय्याथ । सहायको पि भिक्खवे ! सहायकस्स आरोचेत्तु, ति ॥”

एव वुत्ते ते भिक्खु तुएही अहेसु ॥

(२३०) “आनन्द ! छद्म भिक्षुओंको जो चाहे सो कहे, भिक्षुओंको हमसे न बोलना चाहिये, न उपदेश = अनुशासन करना चाहिये ।”

(२३१) तब भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—“भिक्षुओ ! (यदि) बुद्ध, धर्म, संघमें एक भिक्षुको भी कुछ शका हो, (ता) पूछ लो । भिक्षुओ ! पीछे अफमोस मत करना—‘शास्ता हमारे समुप थे, (किन्तु) हम भगवान्के सामने कुछ पूछ न सकें ।’”

(२३२) ऐसा कहनेपर वह भिक्षु चुप रहे । दूसरी बार भी भगवान्ने ० । ० । तीसरी बार भी ० । ० ।

(२३३) अथ खो आयस्सा आनन्दो भगवन्त एतदवोच—
“अच्छगिय भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! एवं पसन्नो अह भन्ते ! इमस्मि
भिवसु सघे नत्थि एक भिवसुस्सा पि कहुवा वा विमत्ति वा बुद्धे वा धम्मे
वा सघे वा मग्गे वा पटिपदाय वा, ति ॥”

(२३४) पसादा खो त्वं आनन्द ! वदेसि ? जाणमेव हेत्य आनन्द !
तथागतस्स । नत्थि इमस्मि भिवसु सघे एक भिवसुस्सा पि कहुवा वा
विमत्ति वा बुद्धे वा धम्मे वा सघे वा मग्गे वा पटिपदाय वा । इमेस
हि आनन्द ! पञ्चन्न भिवसु सतान यो पच्छिमको भिवसु सो सोतापन्नो
अविनिपात धम्मो नियतो सम्बोधि परायणो, ति” ॥

(२३५) अथ खो भगवा भिवसू आमन्तेसि—“हन्द दानि
भिवसवे ! आमन्तयामि वो वय-धम्मा सहारा अप्पमादेन
सम्पादेथा, ति” ॥

अथ तथागतस्स पच्छिमा वाचा ॥

(२३३) तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—“आश्चर्य भन्ते ।
अद्भुत भन्त ॥ में भन्त । इस भिक्षु-संघमें इतना प्रसन्न हूँ । (यहाँ) एक भिक्षुके
भी बुद्ध, धर्म, संघ, मार्ग, या प्रतिपदके विषयमें संदेह (= काक्षा) = विमति नहीं है ।”

(२३४) “आनन्द । ‘प्रसन्न हूँ’ कह रहा है ? आनन्द । तथागतके मालूम
है—इस भिक्षु संघमें एक भिक्षुके भी बुद्धके विषयमें संदेह = विमति नहीं है । आनन्द ।
इन पाँच सौ भिक्षुओंमें जो सबसे छोटा भिक्षु है । वह भी न गिननेवाला हो, नियत
संबोधि परायण है ।”

(२३५) तब भगवान् भिक्षुओंके आमंत्रित किया—“हन्त । भिक्षुओ अत्र
सुग्हे कहता हूँ—“सस्कार (= कृतवस्तु) व्यय धर्मा (= नाशमान्) हैं, अप्रमादके साथ
(= आलस न कर) (जावनके लक्ष्यके) संपादन करो ।”—यह तथागतरु अन्तिम
वचन है ।”

(२३६) अथ खो भगवा पठम भान समापञ्जि । पठम भाना बुद्धहित्वा दुतिय भान समापञ्जि । दुतिय भाना बुद्धहित्वा ततिय भान समापञ्जि । ततिय भाना बुद्धहित्वा चतुर्थं भान समापञ्जि । चतुर्थं भाना बुद्धहित्वा आकासानश्चायतनं समापञ्जि । आकाशानश्चायतन समापत्तिया बुद्धहित्वा विड्वानश्चायतन समापञ्जि । विड्वानश्चायतन समापत्तिया बुद्धहित्वा आकिञ्चञ्जायतन समापञ्जि । आकिञ्चञ्जायतन समापत्तिया बुद्धहित्वा नेवसञ्जा नासञ्जायतन समापञ्जि । नेवसञ्जा ना सञ्जायतन समापत्तिया बुद्धहित्वा सञ्जा वेदयित निरोध समापञ्जि ॥

(२३७) अथ खो आयस्मा आनन्दो आयस्मन्त अनुरुद्ध एतद वाच—परिनिव्युतो भन्ते अनुरुद्ध ! भगवा, ति ॥”

(२३८) नावुसो आनन्द ! भगवा परिनिव्युतो, सञ्जा उदयित निरोध समापन्नो, ति ॥

(२३९) अथ सा भगवा सञ्जा वेदयित निरोध समापत्तिया बुद्धहित्वा नेवसञ्जा नासञ्जा यतन समापञ्जि । नेवसञ्जा नासञ्जायतन समापत्तिया

निर्वाण

(२३६) तत्र भगवान् प्रथम ध्यानरो प्राप्त हुए । प्रथम ध्यानसे उठरर द्वितीय ध्यानको प्राप्त हुए । ० तृतीय ध्यानरो ० । ० चतुर्थ ध्यानरो ० । ० आकाशानन्त्या यतनको ० । ० विद्वानानन्त्यायतनको ० । ० आकिञ्चायतनको ० । ० नैवसञ्जाना सहायतनरो ० । ० संज्ञावेदयितनिरोधको प्राप्त हुए ।

(२३७) तत्र आयुष्मान् आनन्दो आयुष्मार अनुरुद्धसे कहा—‘भन्त अनुरुद्ध । क्या भगवान् परिनिवृत्त हा गये ?’

(२३८) “आवुस आनन्द ! भगवान् परिनिवृत्त नहीं हुए । मज्ञावेदयित निरोधको प्राप्त हुए हैं ।”

(२३९) तत्र भगवान् सज्ञावेदयितनिरोध समापत्ति (= चारो ध्यानको ऊपर को समाधि)से उठरर नवसज्ञा नासज्ञायतनको प्राप्त हुए । ० । द्वितीय ध्यानसे उठरर

बुद्धहित्वा आकिञ्चञ्जायतन समापञ्जि । आकिञ्चञ्जायतन समापत्तिया
 बुद्धहित्वा विञ्जाणञ्जायतन समापञ्जि । विञ्जाणञ्जायतन समापत्तिया
 बुद्धहित्वा आकासानञ्जायतन समापञ्जि । आकासानञ्जायतन समापत्तिया
 बुद्धहित्वा चतुत्थ भान समापञ्जि । चतुत्थ भाना बुद्धहित्वा ततिय
 भानं समापञ्जि । ततिय भाना बुद्धहित्वा दुतिय भान समापञ्जि ।
 दुतिय भाना बुद्धहित्वा पठम भानं समापञ्जि ॥ पठम भाना बुद्धहित्वा
 दुतिय भान समापञ्जि । दुतिय भाना बुद्धहित्वा ततिय भान
 समापञ्जि । ततिय भाना बुद्धहित्वा चतुत्थ भान समापञ्जि । चतुत्थ
 भाना बुद्धहित्वा समनन्तरा भगवा परिनिब्बायि । परिनिब्बुते
 भगवति सह परिनिब्बाना महा भूमिचालो अहोसि । भिसनको
 सलोमहसो देवदुद्रभियो च फलिसु । परिनिब्बुते भगवति सह
 परिनिब्बाना ब्रह्मा सहंपति इम गाय अभासि—

(२४०) सव्वेव निखिस्सपिस्सन्ति, भूता लोके समुस्सय ।

यस्य एतादिसो सत्या, लोके अप्पटि पुग्गलो ॥

तथागतो बलप्पत्तो, सम्बुद्धो परिनिब्बुत्तो, ति ॥ ॥

प्रथम ध्यानसे प्राप्त हुए । प्रथम ध्यानसे उठकर द्वितीय ध्यानको प्राप्त हुए ।
 ० । चतुर्थ ध्यानसे उठनेके अनन्तर भगवान् परिनिर्वाणको प्राप्त हुए । भगवान्के
 परिनिर्वाण होनेपर निर्वाण हातेके साथ भीषण, तोमहर्षण महाभूचाल हुआ । देव
 दुन्दुभियों बजा । भगवान्के परिनिर्वाण होनेपर निर्वाण हातेके साथ सहापति ब्रह्माने
 यह गाथा कही—

(२५०) “स सारके सभा प्राणी जीवनमे गिरेग ।

जय कि ऐस लाकमे अद्वितीय पुरुष बलप्राप्त,

तथागत, शास्ता सुद्ध परिनिर्वाणको प्राप्त हुए”

(२४१) परिनिष्पुते भगवति सह-परिनिष्पाना सप्तो देवानमिन्द्रो
इमं गाय अभासि—

अनिद्या वत सद्गारा, उष्पाद वय धम्मिनो ।

उष्पञ्जित्वा निरुज्झन्ति, तेसं वृपसप्तो सुखो, ति ॥

(२४२) परिनिष्पुते भगवति सह परिनिष्पाना आयस्मा अनुरुद्धो
इमा गायायो अभासि—

नाहु अस्सास-पस्सासो, ठित चिचस्स तादिनो ।

अनेजो सन्तिमारम्भ, य कालमकरी मुनि ॥

असल्लिनेन चिचोन, वेदन अज्झ वासयि ।

पज्जोतस्सेव निष्पान, त्रिमोक्खो चेतसो अट्ट, ति ॥

(२४३) परिनिष्पुते भगवति सह परिनिष्पाना आयस्मा आनन्दो
इमं गाय अभासि—

तदा सिय भिसनक, तदा सिय लोमहसन ।

सन्वाकार वरूपते, सम्मुद्धे परिनिष्पुते, ति ॥

(२४१) भगवान्क परिनिर्वाण होनेपर ० देवेन्द्र शत्रुने यह गाथा कही—

“अरे ! संस्कार (= उत्पन्न वस्तुएँ) उत्पन्न और नष्ट होनवाले हैं ।

(जो) उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं, उनका शान्त होना ही सुख है ।”

(२४२) भगवान्के परिनिर्वाण होनेपर ० आयुष्मान् अनुरुद्धने यह गाथा कही—

“शिर चित्त तथागतता (अन) श्वास प्रश्वास नहीं रहा ।

शांति के लिये निष्कम्प हो मुनिने काल किया ।”

(२४३) भगवान्के परिनिर्वाण होनेपर ० आयुष्मान् आनन्दने यह गाथा कही—

“जब सर्वश्रेष्ठ आनन्दसे युक्त सद्युद्ध परिनिर्वाणका प्राप्त हुए,

“तो उस समय भाषणता हुई, उस समय रोमांच हुआ ।”

(२४४) परिनिव्युते भगवति ये ते तस्य भिक्खु अवीतरागा अप्ये कञ्चे वादा पग्गय्ह कन्दन्ति । छिन्नपात पपतन्ति । आवट्टन्ति । विवट्टन्ति । “अति खिप्प भगवा ! परिनिव्युतो, अति खिप्प सुगतो ! परिनिव्युतो, अति खिप्प चक्खुमा ! लोके अन्तरहितो, ति” ॥ ये पन ते भिक्खु वीतरागा ते सता संपजाना अधिवासेन्ति । “अनिच्चा सह्वारा त कुतेस्य लब्भा ति” ।

(२४५) अय खो आपस्सा अनुरुद्धो भिक्खु आमन्तेसि—“अल आवुसो ! मा सोचित्त्य, मा परिदेवित्त्य । ननु एत आवुसो ! भगवता पटिकच्चेव अक्खात सब्बेहेव पिये हि मनापे हि नाना भावो विना-भावो अञ्जया-भावो त कुतेस्य आवुसो ! लब्भा । य त जात भूत सद्दत पलोक-धम्म त वत मा पलुज्जीति नेत ठान विज्जति । देवता आवुसो ! उज्झायन्ती, ति” ॥

(२४६) कथ भूता पन भन्ते अनुरुद्ध ! देवता मनसि करोन्ती, ति ?

(२४७) सन्तावुसो आनन्द ! देवता आकासे पयवी सञ्चिनियो केसे पकिरिय कन्दन्ति । बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति । छिन्नपात पपतन्ति ।

(२४४) भगवान्के परिनिर्वाण हो जानेपर, जो वह अवीत राग (= अ विरागी) भिक्षु थे, (उनमें) कोई बाँह पकड़कर कन्दन करते थे, कटे (वृत्त) के सदृश गिरते थे, (धरतीपर) लोटते थे—‘भगवान् बहुत जल्दी परिनिर्मुक्त हो गये ० । किन्तु जो वीत राग भिक्षु थे, वह स्मृति स प्रजन्यके साथ स्वीकार (= सहन) करते थे—‘स स्मार अनित्य है, सो कहीं मिलेगा ?’

(२४५) तत्र आयुष्मान् अनुरुद्धने भिक्षुआसे कहा—

“नहीं आवुसो ! शाक मत करो, रोदन मत करो । भगवान्ने तो आवुसो ! यह पहले ही कह दिया है—‘सभी प्रियों०से जुटाई० होनी है ०’ ।”

(२४६) “भन्ते अनुरुद्ध ! देवताओंके मनमे कैसा है ?

(२४७) आवुस आनन्द ! देवता आकाशको पृथिवी ट्यालकर घाल रोते रो रहे हैं । हाथ पकड़कर चिला रहे हैं । कटे (वृत्त) की भाँति भूमि पर गिर रहे हैं ।

आवृत्ति । विवृत्ति । “अति विष्य भगवा ! परिनिष्पुतो, अति विष्य सुगतो ! परिनिष्पुता, अति विष्य चतुष्पा ! लोके अन्तरहिता, ति ॥” मन्तागुप्तो आनन्द ! देवता पयपिया पयरी सञ्चिनिगो केमे पक्रिय कन्दन्ति । पाहा पगयद् कन्दन्ति । दिक्षपात पपतन्ति । आवृत्ति । विवृत्ति । अति विष्य भगवा परिनिष्पुतो, अति विष्य सुगतो परिनिष्पुतो, अति विष्य चतुष्पा लोके अन्तरहिता, ति ॥” या पन देवता वीतरागा सा मता संपन्नाना अभिरासेन्ति,—“अनिष्ठा साहारा तं कृत्य लब्धा, ति ॥”

(२४८) अय सौ आयस्मा च अनुकृष्टो आयस्मा च आनन्दो व रचारसेसं पश्मिया कपाय वीतिनामेषु । अय न्यो आयस्मा अनुकृष्टो आयस्मन्त आनन्द आयन्तेति—“गच्छावुतो आनन्द ! कुसिनार पविसित्वा केसिनारकानं गृहान आगयेद्—“परिनिष्पुतो यासिहा ! भगवा यस्त टानि काल मध्यया, ति ॥”

(२४९) एव भन्ते ! ति न्यो आयस्मा आनन्द आयस्मते अनुकृष्टस्म पटिस्सुत्वा पुष्यन्द समय निरासेत्वा पत चीवरमादाय अत दृतिपो कुसिनार पाविसि । तन न्यो पन समयेन केसिनारका मृटा संधागारे (यह कहते) लोट पोट रहे हैं,—बहुत जन्दी भगवान् निर्गोणको प्राप्त हो रहे हैं । बहुत शीघ्र सुगत निर्गोणरा प्राप्त हो रहे हैं । बहुत शीघ्र चतुष्पा (= बुद्ध) लोकमें अन्तर्भाव हो रहे हैं । ० । और जो देवता होश चेतनाले हैं,—उह होश चेत स्मृति सप्रजयोके साथ सह रहें,—‘स स्तुत (= पूज वस्तुएँ) अनित्य हैं । सो कहीं मिला सकना है ।’

(२४८) आयुष्मान् अनुकृष्ट और आयुष्मान् आनन्दने यह चारी गठ धर्म पधामें बिताई । तब आयुष्मान् अनुकृष्टन आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

‘जायो । आयुस आ द ! कुसीनारामें जाकर, कुसीनारक मझोंस कहे—‘पाशिष्टो । भगवान् परिनिर्वाच हो गये । अत जिसका हुम पाटा समजो (वह करो) ।’

(२४९) “अच्छा भन्त !” यह आयुष्मान् आनन्द पहिनकर पात्र चीवर ले अकेले कुसीनारामें प्रविष्ट हुए । उस समय किसी कामसे कुसीनारक मझ, सस्था

सन्निपतिता हेान्ति तेनेव करणीयेन । अथ खो आयस्मा आनन्दो येन कोसिनारकान मल्लान सन्नागार तेनुपसङ्गमि । उपसङ्गमित्वा कोसिनारकान मल्लान आरोचेसि—“परिनिवुतो वासिट्ठा ! भगवा यस्स दानि काल मर्ज्जथा, ति ॥”

(२५०) इदमायस्मतो आनन्दस्स वचन सुत्वा मल्ला च मल्लपुत्ता च मल्लसुणिसा च मल्लपजापतियो च अघाविनो दुम्पना-चेतो दुक्ख-समप्पिता अप्पे कच्चे केसे पक्किय कन्दन्ति । वाहा पग्गय्ह कन्दन्ति । छिन्नपात पपतन्ति । आवट्टन्ति । विवट्टन्ति—“अति खिप्प भगवा ! परिनिवुतो, अति खिप्प सुगतो ! परिनिवुतो, अति खिप्प चवत्तुमा ! लोके अन्तरहितो, ति ॥”

(२५१) अथ खो कोसिनारका मल्ला पुरिसे आणपेसु—“तेन हि भण्णे ! कुसिनाराय गन्ध माल्ल सब्बञ्च ताल्लावचर सन्निपातेथा, ति ॥”

गार (= प्रजातत्र सभा भरन) मे जमा ये । तत्र आयुष्मान् आनन्द जहाँ मल्लोंका सस्थागार था, वहाँ गये । जाकर कुसीनाराके मल्लोंसे बोल—

“वाशिष्ठो ! भगवान् परिनिवृत हो गये, अत्र जिसका तुम काल समझो (वैसा करो) ॥”

(२५०) आयुष्मान् आनन्दसे यह सुनकर मल्ल, मल्ल पुत्र, मल्ल-उधुयें, मल्ल-भार्यायें दुःखित हो ० कोई केशोंने मिलेरकर बदन करती थीं, दुर्मना चित्तमें सतप्त हो कोई कोई केटोणि मिलेर कर रोती थीं, बौद्ध परञ्चर रोती थीं, (घृत्) की भाँति गिरती थीं, (धरतीपर) लुडित मिलुडित होती थीं—“बळी जल्दी भगवान्का निर्वाण हुआ, बळी जल्दी सुगतना निर्वाण हुआ, वहाँ जल्दी तोरनेत्र अंतर्धान हो गये ॥”

(२५१) तत्र कुसीनाराके मल्लोंने पुरुषोको आह्ला दी—“तो भण्णे ! कुसीनाराका सभी गंध-माला ० वाशोंका जमा करा ॥”

(२५२) अथ खो कोसिनारका मल्ला गन्ध माले च सन्धश्च तालावचर पश्च च दुस्स युग सतानि आदाय येन उपवत्तन मल्लान सालवन, येन भगवतो सररीर, तेनुपसङ्गमिसु । उपसङ्गमित्वा भगवतो सररीर नच्चे हि गीत हि वादिते हि माने हि गन्धे हि सक्करोन्ता गरु करोन्ता मानेन्ता पूजेन्ता चेलवितानानि करोन्ता मण्डल माले पटियादन्ता षड् दिवस वीतिनामेसु ।

(२५३) अथ खा कोसिनारकानं मल्लान एतद्दहोसि—“अति विकालो खो अज्ज भगवतो सररीर भापेतु । स्वेदानि मयं भगरतो सररीर भापेस्सामा, ति” ॥

(२५४) अथ खो कोसिनारका मल्ला भगवतो सररीर नच्चे हि गीते हि वादिते हि माले हि गन्धे हि सक्करोन्ता गरु करोन्ता मानेन्ता पूजेन्ता चेलवितानानि करोन्ता मण्डल माले पटियादेन्ता द्दुत्तियम्पि दिवस वीतिनामेसु । तत्तियम्पि दिवस वीतिनामेसु । चतुत्तियपि दिवस वीतिनामेसु । पञ्चमपि दिवस वीतिनामेसु । छट्ठपि दिवस वीतिनामेसु ॥

(२५२) तब कुसीनारके मल्ल गंध माला, सभी वाद्यों, और पाँच हजार धान (= दुस्स) जोड़ोंको लेकर जहाँ *उपवत्तन ० था, जहाँ भगवान्का शरीर था, वहाँ गये । जाकर उहाँन भगवान्के शरीरको नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गंधसे सत्कार करते, = गुरुकार करते, = माने = पूजते कपड़ेका रितान (= चँदवा) करते, मंडप बनाते उस दिनको रित्त दिया ।

(२५३) तब कुसीनारके मल्लोंको हुआ—‘भगवान्के शरीरके दाह करनेके आज बहुत बिनाल हा गया । अब कल भगवान्के शरीरका दाह करेंगे ।’

(२५४) तब कुसीनारके मल्लान भगवान्के शरीरका नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गंधसे सत्कार करते = गुरुकार करते = मानते = पूजते, चँदवा तानते, मंडप बनाते दूसरा दिन भी रित्त दिया । तीसरा दिन भी ० । ० चौथा दिन भी ० । ० पाँचवाँ दिन भी ० । छठौँ दिन भी ० ।

(२५५) अथ खो सत्तम दिवस कोसिनारकान मल्लान एतदहोसि —
 “मय भगवतो सरीर नच्चे हि गीते हि वादिते हि माले हि गन्धे हि
 सक्करोन्ता गरु करोन्ता भानेन्ता पूजेन्ता दक्खिण्णेन दक्खिण्ण नगरस्स
 हरित्वा वाहिरेन वाहिर दक्खिण्णतो नगरस्स भगवतो सरीर
 भापेस्सामा, ति” ॥ तेन खो पन समयेन अट्ठ मल्ल पापोक्खा
 सीस न्हाता अहतानि वत्थानि निवत्त्या मय भगवतो सरीर उच्चारे-
 स्सामा, ति । न सक्कोन्ति उच्चारेतु ॥

(२५६) अथ खो कोसिनारका मल्ला आयस्मन्त अनुरुद्ध एतदवोचु —
 “कोनु खो भन्ते अनुरुद्ध ! हेतु, को पच्चयो येनिमे अट्ठ मल्ल पापोक्खा
 सीस न्हाता अहतानि वत्थानि निवत्त्या मयं भगवतो सरीर
 उच्चारेस्सामा, ति । न सक्कोन्ति उच्चारेतुन्ति ? ॥”

(२५७) “अञ्जया खो वासिट्ठा ! तुम्हाक अधिप्पायो, अञ्जया
 देवतान अधिप्पायो, ति ॥

(२५८) कथं पन भन्ते ! देवतान अधिप्पायो, ति ?

(२५५) तब सातवें दिन कुमीनाराके मल्लोके यह हुआ—‘हम भगवान्‌र शरीरको नृत्य० गधम सक्कार करते नगरके दक्षिणस लेजाकर बाहरसे बाहर नगरके दक्षिण भगवान्‌के शरीरका दाह करे । उस समय मल्लाके आठ प्रमुत्त (=मुखिया) शिरसे नहाकर, नये वस्त्र पहिन, भगवान्‌के शरीरको उठाना चाहते थे, लेकिन वह नहीं उठा पाते थे ।

(५६) तत्र कुमीनाराके मल्लोंन आयुष्मान् अनुरद्धसे पूछा—“भन्ते ! अनुरुद्ध ! क्या हेतु है = क्या कारण है, जा कि हम आठ मल्ल प्रमुत्त० नहीं उठा सकते ?”

(२५७) “वाशिष्ठो ! तुम्हारा अभिप्राय दूसरा है, और देवताआका अभिप्राय दूसरा है ।”

(२५८) “भन्ते !  अभिप्राय क्या है ?”

(२५९) तुम्हाक ज्यो वासिष्ठा ! अधिष्ठापो "ययं भगवतो सरीर
नद्ये हि गीते हि वादिते हि मातृ हि गन्धे हि सक्रमेन्ता गरु करोन्ता
मानेन्ता पूजेन्ता दक्षिण्येण दक्षिण्येण नगरस्म हरित्या वाहिर्यन वाहिर
दक्षिण्येण नगरस्म भगवतो सरीर भाषेस्सामा, ति" ॥

(२६०) देवतानं खो वासिष्ठा ! अधिष्ठापो—“ययं भगवतो सरीर
दिव्ये हि नद्ये हि गीते हि वादिते हि मातृ हि गन्धे हि सक्रमेन्ता
गरु करोन्ता मानेन्ता पूजेन्ता उत्तरेण उत्तर नगरस्म हरित्या उत्तरेण
द्वारेण नगर परिसर्या मज्जेते मज्जेते नगरस्म हरित्या पुरनियमेन
द्वारेण निरवमित्वा पुरस्थितो नगरस्म मकुट-त्रयं नाम चैत्तिय,
एत्य भगवतो सरीर भाषेस्सामा, ति” ॥

(२६१) “यया भते ! देवतान अधिष्ठापो तथा होतु, ति” ॥

(२६२) तेन खो पन समयेन कामिनारका मल्ला याव सन्धिसमल-
सकटिग जणुमत्तेन ओधिना मधारय पुष्पे हि सन्याता होति ॥

(२५९) “वासिष्ठा ! तुम्हारा अधिष्ठापो है, हम भगवान्के शरीरका नृत्यसे
मत्कार करते० नगरके दक्षिण दक्षिण ल जाकर, बाहरसे बाहर नगरके दक्षिण,
भगवान्के शरीर का दाह करें ।

(२६०) देवताओंका अधिष्ठापो है—हम भगवान्के शरीरका दिव्य नृत्यसे०
सत्कार करते० नगरके उत्तर उत्तर ल जाकर, उत्तर द्वारेसे नगरमें प्रवेशकर, नगरके
बीच ल जा, पूर्व द्वारेसे निकर, नगरके पूर्व द्वार (जहाँ) मकुट-त्रय नामक
मल्लोंका चत्य (= दवस्थान) है, वहाँ भगवान्के शरीरका दाह करें ।”

(२६१) “भन्त ! जैसा देवताओंका अधिष्ठापो है—वैसा ही हो ।”

(२६२) उस समय कुमोनारामे जीवभर मधारय पुष्प (= एक दिव्य पुष्प)
घरसे हुए थे ।

(२६३) अथ खो देवता च कोसिनारका च मल्ला भगवतो सरीर दिग्घे हि च मानुस्सके हि च नच्चे हि गीते हि चादिते हि माले हि गन्धे हि सक्करोन्ता गरु करोन्ता मानेन्ता पूजेन्ता उत्तरेन उत्तर नगरस्स हरित्वा उत्तरेन द्वारेन नगर पवेसेत्वा मज्झेन मग्ग नगरस्स हरित्वा पुरत्थिमेन द्वारेन निक्खमित्वा पुरत्थिमतो नगरस्स मकुट-वन्धनं नाम मट्ठान चेतिर्यं, एत्थ च भगवतो सरीरं निक्खिप्पिसु ॥

(२६४) अथ खो कोसिनारका मट्ठा आयस्सन्त आनन्द एतदवांचु—
“कथं मयं भन्ते आनन्द ! तथागतस्स सरीरे पट्ठिपज्जामा, ति ?”

(२६५) “यथा खो वासिट्ठा ! रज्ज्वो चक्खत्तिस्स सरीरे पट्ठि-
पज्जन्ति, एव तथागतस्स सरीरे पट्ठिपज्जितव्वन्ति ॥”

(२६६) कथं पणं भन्ते आनन्द ! रज्ज्वो चक्खत्तिस्स सरीरे पट्ठि-
पज्जन्ती, ति ?

(२६७) रज्ज्वो वासिट्ठा ! चक्खत्तिस्स सरीरं अहतेन वत्थेन वेठेन्ति ।
अहतेन वत्थेन वेठेत्वा विहतेन कप्पासेन वेठेन्ति । विहतेन कप्पामेन
वेठेत्वा अहतेन वत्थेन वेठेन्ति । एतेन उपायेन पञ्च हि युगं सते हि रज्ज्वो
चक्खत्तिस्स सरीरं वेठेत्वा आयसाय तेल दोणिया पक्खित्वा
अञ्चिस्सा आयसाय दोणिया पट्ठिकुज्जित्वा सब्बं गन्धानं चित्तकं

(२६३) तत्र देवताया और कुसीनाराक मल्लोने भगवान्क शरीरका दिव्य और मानुष नृत्य०के साथ सत्कार करते० नगरसे उत्तर उत्तरसे ले जाकर० (जहाँ) मुकुट बंधन नामक मल्लोंका चैत्य था, वहाँ भगवान्का शरीर रक्खा ।

(२६४) तत्र कुसीनाराक मल्लोंगे आयुष्मान् आनन्दसे कथा—“भन्ते ! आनन्द ! हम तथागतके शरीरको कैसे करें ?”

(२६५) “वासिष्ठो ! जैसे चक्रवर्ती राजाके शरीरका करते हैं, वैसे ही तथागतक शरीरको करना चाहिये ।”

(२६६) “कैसे भन्ते ! चक्रवर्ती राजाके शरीरको करते हैं ।”

(२६७) “वासिष्ठो ! चक्रवर्ती राजाक शरीरको नये कपड़ेसे लपेटते हैं ० । (साहचर) बल्ले चौरस्ते पर तथागतका स्तूप धनवाना चाहिये । वहाँ जो माला, गंध

करित्वा रङ्गो चक्रवत्तिस्त सरीर भ्रापेन्ति । चातु महापये रङ्गो चक्रवत्तिस्त थूप करोन्ति । एव खो वासिद्धा ! रङ्गो चक्रवत्तिस्त सरीरे पटिपञ्जन्ति । “यथा खो वासिद्धा ! रङ्गो चक्रवत्तिस्त सरीरे पटिपञ्जन्ति, एव तयागतस्त सरीरे पटिपञ्जितव्य । चातु महापये तयागतस्त थूपो क्रातव्यो । तस्य ये माल वा गन्ध वा कुण्ठकं वा आरोपेस्सन्ति वा अभिवादेस्सन्ति वा चित्त वा पसादेस्सन्ति, ते सन्तं भविस्सति दीप रच हिताय सुखाया, ति” ॥

(२६८) अथ खो कोसिनारका मद्धा पुरिमे आणापेसु—“तेन हि भणे ! मद्धानं विहत कप्पास सन्निपातेषा, ति” ॥

(२६९) अथ खो कोसिनारका मद्धा भगवतो सरीर अहतेन वत्थेन वेठेत्वा विहतेन कप्पासेन वेठेसु । विहतेन कप्पासेन वेठेत्वा अहतेन वत्थेन वेठेसु । एतेन उपायेन पञ्च हि युग सते हि भगवतो सरीर वेठेत्वा आयसाय तेल-दोणिया पन्निखपित्वा अञ्जिस्ता आयसाय दोणिया पटिकुञ्जित्वा सब्ब गन्धानं चित्तक करित्वा भगवतो सरीरं आरोपेसु ॥

या चूण चढायगे, या अभिवादन करेगे, या चित्तको प्रमज करेगे, उनक लिये वह चिरकाल तक हित सुगन्धके लिये हागा ।”

(२६८) तब कुसीनाराजे मद्धोने आदमियाकी आज्ञा दी—‘जाओ रे ! धुनी रुईको एकत्रित करो ।

(२६९) तब कुसीनाराज मद्धाने भगवान्‌के शरीरको कोरे वस्त्रमें लपेटा । कोरे वस्त्रमें लपेटकर धुने कपामसे लपेटा । धुने कपासस लपेटकर, कोरे वस्त्रमें लपेटा । इसी प्रकार पाँच सौ जोड़में लपेटकर धुने (= लोह) की तेलजाली कळाही (=द्रोणी) में रख सारे गंध (काष्ठा) की चित्ता बनाकर, भगवान्‌के शरीरको चित्तापर रचना ।

(२७०) तेन खो पन समयेन आयस्मा महाकस्सपो पावाय कुसिनार अट्ठान मग्गप्पटिपन्नो होति महता भिक्खु संघेन सद्धिं पञ्चमत्ते हि भिक्खु सते हि । अय खो आयस्मा महाकस्सपो मग्गा ओरुम्म अञ्जतरस्सि रुक्ख मूले निसीदि । तेन खो पन समयेन अञ्जतरो आजीवको कुसिनाराय मन्धारव पुप्फ गहेत्वा पाव अट्ठान मग्गप्पटिपन्नो होति । अइसा खा आयस्मा महाकस्सपो त आजीवक दूरतो व आगच्छन्त दिस्वा त आजीवक एतदवोच,—

(२७१) “आवुसो ! अम्हाक सत्थार जानासो, ति ?”

(२७२) “आमावुसो ! जानामि, अञ्ज सत्ताह परिनिव्वुतो समणो गोतमो । ततो मे इद् मन्धारव पुप्फ गहितन्ति” ॥

(२७३) तत्थ ये ते भिक्खु अवीतरागा अप्पे कच्चे चाहा पग्गट्ठ कन्दन्ति । छिन्नपात पपतन्ति । आवट्टन्ति । विवट्टन्ति,—“अति खिप्प भगवा ! परिनिव्वुतो, अति खिप्प सुगतो ! परिनिव्वुतो, अति खिप्प

महाकाश्यपका दर्शन

(२७०) उस समय आयुष्मान् महाकाश्यप पाँच सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु संघके साथ पावा और कुसिनाराके बीचमें, रातमें जा रहे थे । तब आयुष्मान् महाकाश्यप मार्गसे हटकर एक वृक्षके नीचे बैठे । उस समय एक आजीवक कुसिनारासे मन्दारका पुष्प ल पावाके रातमें जा रहा था । आयुष्मान् महाकाश्यपने उस आजीवकको दूरसे आते देखा । देखकर उस आजीवकसे यह कहा—

(२७१) “आवुस ! क्या हमारे शास्ताको भी जानते हो ?”

(२७२) “हाँ, आवुस ! जानता हूँ, श्रमण गौतमको परिनिर्वात हुए आज एक सप्ताह होगया, मैंने यह मदार पुष्प वहींसे पाया ।”

(२७३) यह सुन वहाँ जो अवीतराग भिक्षु थे, (उनमें) कोई कोई पाँच पकळकर रोते ० । उस समय सुभद्र नामक (एक) वृद्धप्रसूजित (= बुढ़ापेमें साधु हुआ) उस परिषद्में बैठा था । तब सुभद्रने उन भिक्षुओंसे यह कहा—“मत

चक्षुषाम् ! लोके अन्तरहितो, ति” । ये पन ते भिक्खू वीतरागा ते सता सम्पजाना अधिवासेन्ति,—“अनिचा सद्दारा त कुतेत्य लब्भा,ति” ॥

तेन खो पन समयेन सुभदो नाम बुद्ध पञ्चजितो तस्स परिसाय निसिन्नो होति । अथ खो सुभदो बुद्ध पञ्चजितो ते भिक्खू एतद्वचोच,—
“अल आवुसो ! मा सोचित्थ मा परिदेवित्थ । सुमुत्ता मय तेन महा-समणेन उपद्दुता च हाम ‘इद वो कप्पति, इद वो न कप्पती, ति’ । इदानि पन मयं य इच्छिस्साम त करिस्साम । य न इच्छिस्साम न त करिस्सामा, ति” ॥

(२७४) अथ खा आयस्सा महाकम्मपो भिक्खू आपन्नेमि,—“अल आवुसो ! मा सोचित्थ मा परिदेवित्थ । ननु एत आवुसो ! भगवता पटिकघोव अवखात, सग्गे हेव पिये हि मनापे हि नाना भावो विना भावो अञ्जया-भावो । त कुतेत्य आवुसा ! लब्भा । यन्त जात भूत सद्दुत पलाक धम्म, त तथागतस्सा पि सरीर मा पल्लुज्जीति । नेत ठान विज्जती, ति” ॥

(२७५) तेन खो पन समयेन चत्तारो मल्ला पामाक्खा सीसं न्हाता अहत्तानि वत्थानि निवत्थया मय भगवता चित्तक आलिम्पेस्सामा, ति । न सक्कोन्ति आलिम्पेतु । अथ खा फासिनारका मल्ला आयस्मन्तं अनुरुद्ध आवुसो । मत्त शोकं अरा, मत्त रोअो । हम सुमुत्त हा गय । उस महाश्रमणसे पीछित रहा करत थे—‘यह तुम्हें विहित है, यह तुम्हें विहित रहा है ।’ ‘अर हम जो चाहेगे, सो करेंगे, जो नहीं चाहेगे, सो नहीं करेंगे ।’

(२७६) तत्र आयुष्मान् महानाशयवने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—“आवुसो ! मत्त सोचो, मत्त रोअो । आवुसा ! भगवान्त तो यह पहले ही कह दिया है—सभी मिया = मनापासे जुड़ाई ० होनी है, सो यह आवुसा ! कहां मित्तवेवाला है ? जा जात १ = उत्पन्न = भूत ० है, यह नाश होनेवाला है । ‘हाय ! यह नाश मत हो’—यह सम्भव नहा ।’

(२७७) उस समय चार मल्ल प्रमुख शिरसे नरकर, नया बख पहिन, भगवान्की चित्ताप्राप्त देना चाहत थे, किन्तु नहीं द सकते थे । वन कुमीनारा के महान

एतदवोचु — “कोनु खो भन्ते अनुरुद्ध ! हेतु को पञ्चयो, येनिमे चत्तारो मल्लो पामोषत्वा सीसं न्हाता अहतानि वत्यानि निवत्या मय भगवतो चित्तक आलिम्पेस्सामा, ति । न सकोन्ति आलिम्पेतुन्ति” ॥

(२७६) “अब्बया खो वासिद्धा ! देवतान अधिप्पायो, ति” ॥

(२७७) कथ पन भन्ते ! देवतान अधिप्पायो, ति ?

(२७८) देवतानं खो वासिद्धा ! अधिप्पायो,—“अय आयस्सा महाकस्सपो पावाय कुसिनार अद्धान मग्गप्पटिपन्नो महता भिक्खु-संघेन सद्धिं पञ्चमत्ते हि भिक्खु सत्ते हि । न ताव भगवतो चित्तको पञ्जलिस्सति, यावायस्सा महाकस्सपो भगवतो पादे सिरसा न वन्दिस्सती, ति” ॥

(२७९) “यथा भन्ते ! देवतान अधिप्पायो तथा होतू, ति” ॥

(२८०) अय खो आयस्सा महाकस्सपो येन कुसिनारा मकुट-वन्धन नाम मल्लान चेतिय येन भगवतो चित्तको तेनुपसङ्गमि । उपसङ्ग मित्था एकसं चीवर कत्वा अज्जलिं पणामेत्वा तिक्खत्तु चित्तक पदक्खिणण

आयुष्मान् अनुरुद्धसे पूढा—“भन्ते अनुरुद्ध । क्या हेतु है=क्या प्रत्यय है, जिससे कि चार मल्ल-प्रमुख० आग नहीं दे सकते हैं ।”

(२७६) “वाशिष्टो । ० देवताओंका दूसरा ही अभिप्राय है ।”

(२७७) भन्ते । देवताओं का अभिप्राय क्या है ?

(२७८) आयुष्मान् महाकाश्यप पाँच सौ भिक्षुओंके महाभिजुसंघके साथ पावा और कुसिनाराके बीच रास्तेमें आ रहे हैं । भगवान्की चिता तब तक न जनेगी, जब तक आयुष्मान् महाकाश्यप स्वयं भगवान्के चरणोंके शिरसे वन्दना न कर लेंगे ।”

(२७९) “भन्ते ! जैसा देवताओंका अभिप्राय है, वैसा ही हो ।”

(२८०) तब आयुष्मान् महाकाश्यपने जहाँ मल्लका मुकुटवन्धन नामक चैत्य था, जहाँ भगवान्की चिता थी, वहाँ पहुँचकर, चीवरको एक पक्षेपर कर अञ्जली

करवा भगवता पादे सिरमा यदि । तानि पि ग्यो पञ्च भिक्तु सतानि
एकसं चीवर करवा अञ्जलिं पणामेत्वा तिरत्तुं चित्तक पदवित्त्वण करवा
भगवतो पादे सिरमा यदिदु । उन्दिने च पनायम्भता महाकस्मपेन
तेहि च पञ्च हि भिक्तु मन दि मयमेव भगवतो चित्तको पञ्जलि ॥

(२८१) भ्वायमानस्म खा पन भगवतो सरीरस्म यं अहोसि ह्वीति
वा चम्पन्ति वा मसन्ति वा न्दारुति वा लसिकाति वा । तस्म नेव छारिका
पञ्जायित्य न ममी । सरीरा नेव अत्रसिस्मिमु । सेटपया पि नाप,—
सण्पिस्म वा तेलस्स वा भ्वायमानस्म नेव छारिका पञ्जायति न मसी,
एवमेव भगवतो सरीरस्स भ्वायमानस्स यं अहोसि ह्वीति वा चम्पन्ति
वा मसन्ति वा न्दारुति वा लसिकाति वा, तस्म नेव छारिका पञ्जा
यित्य न ममी । सरीरा नेव अत्रसिस्मिमु । तेत्तश्च पञ्चन्न द्दस्म युग
सतान द्वेय द्दस्सानि न उद्विदु यश्च मन्व अन्धन्तरिम यश्च वाहिर ।
उद्वे च खो पन भगवतो सरीरे अन्तलिधवा उदक धारा पातुभवित्वा
भगवता चित्तक निग्वापेमि । उदक साल्लो पि अन्धुन्मिन्त्वा भगवतो
चित्तक निग्वापेसि । फोमिनारका पि मल्ला सन्व गन्पोद्रेन भगवतो
चित्तकं निग्वापेसु ॥

जोळ, तीन धार चिताकी परिक्रमाकर, चरण गोलकर, शिरसे वन्दना की । इन
पाँच सौ भिक्षुओंने भा एक कचेपर चीवर कर, हाथ जोळ तीन धार चिताकी
प्र चिराकर, भगवान्‌र चरणोंमें शिरसे वन्दना की । आयुष्मान् महाकारयप और
इन पाँच सौ भिक्षुओंक वन्दना कर लेते हो, भगवान्‌री चिता स्वयं जा उठी ।

(२८१) भगवान्‌के शरीरमें जो ह्वि (= फिज्जा) या चम, मोस, तम, वा
लसिका थी उनही न राख जान पळो, न कायना, सिक्क अस्त्रियाँ ही धारो रह गई,
जैसे कि जलव हुण घो या तेवही न राख (- छारिका) जान पळती है, न फोयना
(= ममी) । भगवान्‌के शरीरके दग्ध हो जानेपर मेरने प्रादुभूत हो आरगशसे
भगवान्‌की चिताको ठंटा किया । कुत्तोनारके मल्लोंने भी सर्व-गध (मिश्रित)
जलसे भगवान्‌री चिताको ठंटा किया ।

(२८२) अथ खो फोसिनारका मछ्छा भगवतो सरीरानि सत्ताह सन्धागारे सत्ति-पञ्जरं करित्वा धनु पाकार परिवखीपापेत्वा नधे हि गीते हि वादिते हि माले हि गन्धे हि सक्करिंसु गरु-करिंसु मानेसु पूजेसु ॥

(२८३) अस्सोसि खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहि पुत्तो,—‘भगवा किर कुसिनाराय परिनिब्बुतो, ति’ । अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहि-पुत्तो फोसिनारकान मल्लान दूत पाहेसि,—‘भगवा पि खत्तियो अह पि खत्तियो । अह पि अरहामि भगवतो सरीरान भागं । अह पि भगवतो सरारान थूपश्च महश्च करिस्सामी, ति’ ॥

(२८४) अस्सोसु’ खो वेसालिका लिच्छवी,—‘भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो, ति ।’ अथ खो वेसालिका लिच्छवी फोसिनारकान मल्लान दूत पाहेसु,—‘भगवा पि खत्तियो मयम्पि खत्तिया । मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरानं भाग । मयम्पि भगवतो सरीरान थूपश्च महश्च करिस्सामा, ति’ ॥

(२८२) तत्र कुमिनाराके मल्लोंने भगवान्सी अस्थियां (=सरीरानि) को सप्ताह भर सन्धागारमे शक्ति (हस्त पुरुषोंके घेरेका) पंजर बनवा, धनुष (हस्त पुरुषोंके घेरेका) प्राकार बनवा, नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गन्धसे सत्कार किया = गुरुकार किया, माना - पूजा ।

स्तूप-निर्माण

(२८३) राजा मागध अजातशत्रु वैद्दहापुत्रने सुना—‘भगवान् कुसिनारायं परिनिर्णको प्राप्त हुण ।’ तत्र राजा० अजातशत्रु०ने कुमिनाराके मल्लोंके पास दूत भेजा—‘भगवान् भी क्षत्रिय (थे), मैं भी क्षत्रिय (हूँ), भगवान्क शरीरों (= अस्थियों) में मेरा भाग भी वाजिब है । मे भी भगवान्के शरीरोंका स्तूप बननाऊँगा और पूजा करूँगा ।’

(२८४) वैशालीके लिच्छवियोंने सुना ० ।

(२८५) अस्मांसु ग्वा कपिलवत्यु वासी सन्या—‘भगवा किर कुसिनाराय परिनिवुतो, ति’ । अथ ग्वा कपिलवत्यु रासी सन्या कोसिनारकान मल्लान दूत पाहेसु,—‘भगवा अम्हाकं धाति सेहो । मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरान भाग । मयम्पि भगवतो सरीरान यूपञ्च महञ्च करिस्सामा, ति’ ॥

(२८६) अस्मांसु’ खा अल्लकप्पका पुलयो—‘भगवा किर कुसिनाराय परिनिवुतो, ति’ । अथ खा अल्लकप्पका पुलयो कोसिनारकान मल्लान दूत पाहेसु,—‘भगवा पि खत्तियो मयम्पि सत्तिया । मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरान भाग । मयम्पि भगवतो सरीरान यूपञ्च महञ्च करिस्सामा, ति’ ॥

(२८७) अस्मांसु खो रामगामका कोलिया—‘भगवा किर कुसिनाराय परिनिवुतो, ति’ । अथ खो रामगामका कोलिया कोसिनारकान मल्लान दूत पाहेसु,—‘भगवा पि खत्तियो मयम्पि सत्तिया । मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरान भाग । मयम्पि भगवतो सरीरान यूपञ्च महञ्च करिस्सामा, ति’ ॥

(२८८) अस्मांसि खो वेठ दीपको* ब्राह्मणो—‘भगवा किर कुसिनाराय परिनिवुतो, ति’ । अथ खो वेठ दीपको ब्राह्मणो कोसिनारकान मल्लान दूत पाहेसि,—‘भगवा पि खत्तियो अहमस्मि ब्राह्मणो । अहमपि अरहामि भगवतो सरीरान भाग । अहपि भगवतो सरीरान यूपञ्च महञ्च करिस्सामी, ति’ ॥

(२८५) कपिलवत्यु शाक्योने सुता ० ।—‘भगवान् हमारे क्षात्रिक (धे) ० ।

(२८६) अल्लकप्पकं पुलियोने सुता ० ।

(२८७) रामगामके कालियोने सुता ० ।

(२८८) वेठ दीपक ब्राह्मणाने सुता ०, भगवान् भी क्षत्रिय धे, हम ब्राह्मण ० ।

* शिवालय मे ‘विष्णु दाय’ ३ ।

(२८९) अस्सोसुं खो पावेय्यका मल्ला*—‘भगवा किर कुत्ति-
नाराय परिनिब्बुतो, ति’ । अथ खो पावेय्यका मल्ला कोसिनारकान
मल्लान दत्त पाहेसु,—‘भगरा पि खत्तियो मयम्पि खत्तिया । मयम्पि
अरहाम भगवतो सरीरानं भाग । मयम्पि भगवतो मरीरान यूपञ्च
महञ्च करिस्सामा, ति’ ॥

(२९०) एव वुत्ते कोसिनारका मल्ला ते सद्दे गणे एतदवाञ्चु—
‘भगवा अम्हाक गाभन्वेत्ते परिनिब्बुतो । न मय दस्साम भगवतो
सरीरान भागन्ति’ ॥

(२९१) एव वुत्ते दोणो ब्राह्मणो ते सद्दे गणे एतदवाञ्चु,—
“सुणन्तु भोन्तो ! मम एक वाच, अम्हाक बुद्धो अद्दु सन्ति वादा ।
नहि साधु य उचम पुग्गलस्स, सरीर-भागे सिया सपहारो ॥
सब्बे व भोन्तो ! सहिता समग्गा, सम्पोदमाना कगेपढ मार्गे ।
वित्थारिका होन्तु दिसासु य्पा, बहूजना चवलुमतो पसन्ना, ति ॥”

(२९२) “तेन हि ब्राह्मण ! त्वञ्जेव भगवतो सरीरानि अद्दया
सम सुविभत्त विभज्जाही, ति” ॥

(२८९) पात्राके मल्लोंन भी सुना ० ।

(२९०) ऐसा कहनेपर कुसीनाराके महनोंने उन संघों और गणसङ्घ—
“भगवान हमारे प्राम क्षेत्रमें परिनिर्वात हुए, हम भगवान्के शरीरों (अस्सोसुं) का
भाग नहीं देंगे ।”

(२९१) ऐसा कहनेपर दोण ब्राह्मणने उन संघों और गणसङ्घ—

“आप सब मेरी एक बात सुनें, हमारे बुद्ध धार्मिक (संघ) के हैं ।
यह ठीक नहीं कि (उम) उत्तम पुरुषों की अस्विकृत शरीरों का भाग लें ।

“आप सभी एक साथ = एक साथ समोदन करत अठका करें ।

दिशाओंमें स्तूपोंका विस्तार हो, बहुतसे लोग बुद्धों (संघ) में प्रसन्न हों ।

(२९२) “तेन ब्राह्मण ! वही भगवान्के शरीरों का भाग समान भागोंमें

सुविभक्त कर ।”

* पट्टरीना के आस पास में रहनेवाले मल्ल ।

(२९३) “एवं भा” ति खो दोणो द्राक्षणो तेस सहान गणान पटिस्सुत्वा भगवता सरीरानि अट्ठथा समं सुविभत्त विभज्जित्वा ते मइ गणे पतदवोच—“इमं मे भोन्तो ! तुम्ह ददन्तु, अह पि तुम्हस्म यूपञ्च महञ्च करिस्सामी, ति” ॥

(२९४) अदसु खो ते दोणस्स द्राक्षस्म तुम्ह ॥

(२९५) अस्मोसु खो पिप्पलिवनिया मोरिया—‘भगवा फि रिसिनाराय परिनिष्पुतो, ति’ ॥ अथ खो पिप्पलिवनिया मोरिया फासिनारफान मल्लान दूत पाइसु,—‘भगवा पि खत्तिया मयम्पि खत्तिया । मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरान भाग । मयम्पि भगवतो सरीरानं यूपञ्च महञ्च करिस्सामी, ति’ ॥

“नत्थि भगवतो सरीरान भागो, विभत्तानि भगवतो सरीरानि । इतो अङ्गार इरया, ति” । त ततो अङ्गार आहरिंसु ॥

(२९६) अथ खो [१] राजा माग्घो अजातसत्तु वेदेहि-पुत्तो राजगहे भगवता सरीरान थूपञ्च महञ्च अकासि ॥

(२९३) “अथा भो ।” द्राक्ष द्राक्षणन भगवान् शरीरोंको आठ समान भागोंमें सुविभक्त (= बाँट), कर, उन सँगों गणोंसे कहा—“आप सब इस तुम्हेंका मुझे दें, मैं तुम्हेंका स्तूप बनाऊँगा और पूजा करूँगा ।”

(२९४) उन्होंने द्राक्ष द्राक्षणोंसे तुम्हें द दिया ।

(२९५) पिप्पलीवनसे मोरिया (= मौर्यों) ने सुना ० “भगवान्की क्षत्रिय हमभी क्षत्रिय ० ।”

“भगवान्के शरीरोंका भाग नहीं है, भगवान् शरीर बाँट चुके । यहाँ से फायला (= अंगार) ले जाओ ।” वह यहाँसे अंगार ले गये ।

(२९६) सब [१] राजा ० * अजातशत्रु ० ने राजशुद्धमे भगवान्के अस्थियोंका

० अ क “कुत्सानारासे राजशुद्ध पचीस योजन है । इस बीचमें आठ श्रृणम

[२] वैसालिका पि लिच्छवी वैसालियं भगवतो सरीरान यूपञ्च महञ्च अकसु ॥

[३] कपिलवत्थु वासी सब्बा कपिलवत्थुस्मि भगवतो सरीरान यूपञ्च महञ्च अकसु ॥

[४] अल्लकप्पका पि बुलियो अल्लकप्पे भगवतो सरीरान यूपञ्च महञ्च अकसु ॥

[५] रामगाभका पि कोलिया रामगामे भगवतो सरीरान यूपञ्च महञ्च अकसु ॥

स्तूप (बनाया) और पूजा (=मह) की [२] वैशाली के लिच्छवियों ने भी ० । [३] कपिलवस्तु के शास्यों ने भी ० । [४] अल्लकप्पक बुलियों ने भी ० । [५] राम

चीला समतल मार्ग बनवा, मक्ष राजाओं ने मुकुट-बघन और सव्यागार में जैसी पूजा की थी, वैसीही पूजा पचीस योजन माग में की । (उसने) अपने पाँच सौ योजन परिमंडल (= घेरेवाले) राज्य के मनुष्यों ने एकत्रित करवाया । उन घातुओं को ले, कुसीनारासे घातु (निमित्त) क्रीडा करते निकलकर (लोग) जहाँ सुन्दर पुरुषों को देखते, वही पूजा करते थे । इस प्रकार घातु लेकर आते हुए, सात वर्ष सात मास सात दिन बीत गये । लाई गई घातुओं को लेकर (अजातशत्रु ने) राजगृह में स्तूप बनवाया, पूजा कराई ।

इस प्रकार स्तूपों के प्रतिष्ठित हो जाने पर महाकाश्यप स्वविर ने घातुओं के अन्तराय (= विघ्न) को देखकर, राजा अजातशत्रु के पास जाकर कहा—“महाराज ! एक घातु निघान (= अस्थि घातु रखने का चहचहा) बनाना चाहिये ।” “अच्छा भन्ते ।”

स्वविर उन-उन राजकुलों को पूजा करने मानकी घातु छोड़कर बाकी घातुओं को ले आये । रामग्राम में घातुओं का तागो के ग्रहण करने से अन्तराय न था, भविष्य में लना क्षीप में इसे महाप्रिहार के महाचैय में स्थापित करेंगे—(के रयालसे भी) न ले आये । बाकी सातों नगरों से ले आकर, राजगृह के पूर्व दक्षिण भाग में (जो स्थान है), राजाने उस स्थान को खुदवाकर, उससे निकला मिट्टी से ईंटें बनवाईं । ‘यहाँ राजा क्या बनवाता है’, पूछनेवालों को भी ‘महाभाव होकर चैय बनवाता है’ यही कहते थे, कोई भी घातु निघानकी बात न मानता था ।

[६] वेठ दीपको पि ब्राह्मणो वेठ दीपे भगवतो सरीरान यूपञ्च महञ्च अकासि ।

[७] पावेद्वयमा पि मल्ला पात्राय भगवतो सरीरानं यूपञ्च महञ्च अकसु ॥

[८] कासिनारका पि मल्ला कुसिनारायं भगवतो सरीरानं यूपञ्च महञ्च अकसु ॥

[९] दोणो पि ब्राह्मणो तुम्बस्स यूपञ्च महञ्च अकासि ॥

[१०] पिप्पलिवनिया पि मोरिया पिप्पलिवने अङ्गागण यूपञ्च महञ्च अकसु ॥

(२९७) इति अह सरीर-थूपा, त्वमा तुम्ब-थूपो, दसमो अङ्गार-थूपो, एवमेतं भूत पुञ्जन्ति ॥

अह दोण चवत्तुमतो सरीर, सत्त दोण जम्बुदीपे महेन्ति ।

(२९८) एकञ्च दोण पुरिस वरुत्तमस्स, रामगामे नागराजा महेत्ति ॥

एका हि दाठा ति दिवे हि पूजिता, एका पन गन्धार पुं महीयति ।

कालिङ्ग रञ्जो विजिते पुनेक, एक पन नागराजा महेत्ति ॥

गामके कोलियोने भी ० । [६] वेठदीपके ब्राह्मणोनेभी ० । [७] पात्राके महाने भी ० । [८] कुसिनाराके महान भी ० । [९] द्राण ब्राह्मणेने भी तुम्बका ० । [१०] पिप्पलीवन क मौर्योण भी अगारोमा ० ।

(२९७) इत प्रार आठ शरीर (= अस्त्रि) के स्तूप, नवौ तुम्ब स्तूप और दसमौ कोयला स्तूप पूर्वकाल (= भूतपूर्व) में थे ।

(२९८) "चञ्चुमानका शरीर आठ द्रोण था, (जिसमें) सात द्रोण जम्बुदीपम पूजित होते हैं ।

(और) पुरपोत्तमका एक द्राण राम गाममें नागोसे पूजा जाता है ।

परु दाड (= दाठा) स्वर्ग-लोकमें पूजित है, और एक गन्धारपुरम पूजी जाती है ।

तस्सेव तेजेन अय वसुन्धरा, आयाग सेट्टे हि मही अलङ्कता ।
 एव इम चक्खुमतो सरीर, सुसकत सकत सकतेहि ॥
 देविन्द नागिन्द नरिन्द पूजितो, मनुस्सिन्द सेट्टे हि तथेव पूजितो ।
 त वन्दथ पञ्चलिका लभित्वा, बुद्धो हवे कप्प सते हि दुल्लभो, ति ॥

चत्तालीस समा दन्ता, केसा लोमा च सब्बसो ।
 देवा हरिसु एकेक, चक्खवाल परपरा, ति ॥

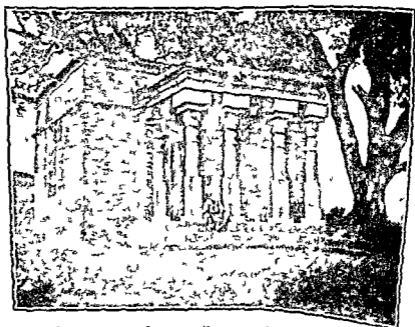
महापरिनिबानसुच ततिय ॥

एक कलिगराजाके दशमे है, और एकेको नागराज पूजते हैं ।
 उसी तेजसे पट्टुकाकी भौंति यह वसु धरा मही अलङ्कृत है ।
 इस प्रकार चकुष्मान् (= बुद्ध) का शरीर सत्कृतों द्वारा सुसत्कृत हुआ ।
 देवेन्द्रों नागेन्द्रों नरेन्द्रोंसे पूजित, तथा श्रेष्ठ मनुष्योंसे पूजित हुआ ।
 उससे हाथ जोलकर वदना करो, सौ कल्पमे भी बुद्ध होना दुर्लभ है ।
 चालीस देश, रोम आदिको चारों ओर,
 एक एक करके नाना चक्रवालोंमें दक्षता ले गये ।

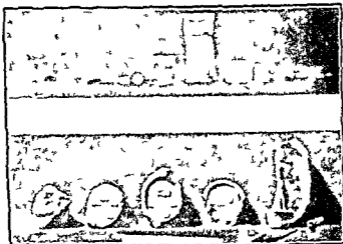
तृतीय महापरिनिर्वाण मूत्र ॥



दुशिनगर का प्रत्मान "शमभार" स्तूप, इसी स्थान पर
भगवान् की दाहिना क्रिया हुई थी ।

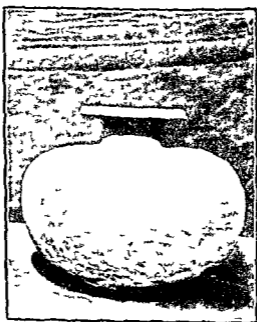


दुशिनगर का एक मन्दिर । इसमें भगवान् की एक विशाल मूर्ति है ।
(वर्तमान माथा गात्र)



(१) कुशिनगर में महापरिनिर्वाण-स्तूप की खुदाई में प्राप्त भगवान् के शरीर भातु रखने की कुछ डिब्बियाँ ।

(२) कुशिनगर महापरिनिर्वाण स्तूप के अन्दर से मिला हुई पत्थर की कुछ मुहरों इन मुद्राया के साथ में " महापरिनिर्वाण " आदि लेख खुद हैं ।



कुशिनगर के महापरिनिर्वाण स्तूप की खुदाई में प्राप्त लकड़ पत्र । इस पत्र में कायला, मोती, सात आदि अनेक चीजें मिली हैं ।

कुसिनगर का पुरातत्त्व-लेख संग्रह

भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण स्थान, कुसिनगर (वर्तमान, माथाकुण्ड, पि० गोरसपुर) में पुरातत्त्व विभाग की श्रौर से समय समय पर जो खुदाई हुई थी, उसमें मिले हुए पुराने लेखों में से कुछ आवश्यक लेखों का यहाँ संग्रह है।

यहाँ की खुदाई सन् १८७५ ई० से लेकर सन् १९११ ई० तक हुई थी। अधिकांश लेख सन् १९१०—११ ई० के बीच प्राप्त हुए।

(१) एक पत्थर के छत्र (जिसमें सारिपुत्र की मूर्ति भी घनी है) पर कुटिल अक्षर में निम्नलिखित लेख लिखा हुआ है—

“X X X X X (ते) सन्धुवाच—तेपञ्च यो निरोधा—
X X X X X सघ सारिपुत्रस्य ।”

(२) श्री महापरिनिर्वाण मन्दिर के सामने जमीन के अन्दर से एक ताम्र पत्र मिला था, उस पर भगवान् के शिष्य अस्सजित (अश्वजित्) द्वारा सारिपुत्र को राजगिरि में दिया हुआ उपदेश संस्मृत भाषा में लिखा है—

“ये धर्मा हेतु प्रमया हेतु तेभ्यान्—
तथागताह्य पदत् । तेपञ्च यो
निरोध परम् वादी महाश्रमण ।”

(३) मिट्टी को पकाकर बनाई हुई मुद्राएँ (Clay seals) सब मिलाकर ८६५ प्राप्त हुईं। उनमें से कुछ मुद्राओं पर निम्नलिखित लेख हैं—

(क) आर्या ए वृध्वै ॥

(ख) श्री महापरिनिर्वाण विहारे भिच्छ सघस्य ॥

(ग) श्री महापरिनिर्वाण विहारीयार्य भिच्छसघस्य ॥

(घ) कुसनगर ॥

(ङ) देवधर्मोयम् साक्य भिच्छर्मदन्त सुजीरस्य कृतिर्दिनस्य ॥

(च) श्री विष्णु द्वीप विहारे भिच्छ सघस्य ॥

(छ) श्रीमद् परराड महाविहारे श्राव्य भिद्य सधस्य ॥

(४) बाकी मुठानों पर लिखे हुए नाम इस तरह हैं—

घण्टक । विद्विसम्पर । ताराशय । रत्नमति । प्रसन्ता श्रीप्रभा ।
 अभिप्रासिद्धि । वामुक । विहार । शत्रु ज्ञान । छत्र दत्त । शानन्द
 सिंग । गङ्गायम्भ । सिरिन्द । दिवाकर प्रभा । तारामित्र । तारा
 शरण । तारावल । तारक ऊम् । यक्षतपालित । प्रद्वान धीप्रभ ।
 सीलगुत्त । देवुष । कुसल । अप्रमाद । कमल सिरिप्रभ । कमल
 प्रभ । सन्ध सिद्धि । सन्ध मित्त । यखुष । पञ्चावला । साधक ।
 सील । दूगसरण । यागदत्त । भूच्छर दत्त । धल्लभ । सीरिमभाव ।
 प्रिय गुत्त । हरक । घाला । अरिय । ददुक । मन । सीरिमद्
 दिा । वीग्सेन । सीरियाला । सीरिसेन । लापेक । ' विांत
 मत । कुमारामातस्म । कमलसीरिप्रभ । मुप्पयुद्ध ॥

(५) श्री महापरिनिर्वाण स्तूप की रोदते समय उसके अन्दर वाले का
 एक बड़ा घड़ा मिला था । उसके ऊपर जो ताँब्र पत्र ढका हुआ था,
 उस पर निम्नलिखित लेख लिखा हुआ है । डा० फ्लीट के मता
 अनुसार यह लेख मन् ४००—५०० ई० के बीच गुप्त काल का है* ।

1—पयम् मया श्रुतम् = एकस्मि समयेन भगवान् श्रावस्त्याम् विहरतिस्म
 जेतने अनाथपिण्डदस्वारामे []

2—तत्र [भ] गजान = भिन्ना—म [] ध [माणाम् घो भिद्य
 ' देश] विश्यामि—अपचयम् च तच्च धि [गुत
 सावु च]

3—सुष्ठु च मासि कुरुत भापिश्ये [धमा] ना [माचय क्तमो यदुत = ऽस्मि
 नतिदम् भव] ति अस्थोत्पादादि [दमु पचने यदुता]

4—विद्या प्रत्यया सस्कारा सस्कार प्रत्ययम् विज्ञानम् [विज्ञान प्रत्ययम्
 ताम रूपम् नामरूप—प्र] य [ऽयम्] पडायानम् पडा [यत—प्रत्यय
 स्पश]

5—स्पर्श—प्रत्यया वेदना वेदना—प्रत्यया तृष्णा तृष्णा—[प्रत्ययम् = उपादानम् =
 उपादान—प्रत्ययो भुवो] भुव—प्रत्यया जाति [जाति—प्रत्यया जरा]

* विस्तार के लिये 'The Archæological Annual Report, 1910—11' को देखो ।

- 6—मरण-शोक-परिदेव-दु ख-दोर्मनस्योपा [यासा भवन्ति । पद्यम् अस्य केवल]स्य मह [तो दु]ख-रुन्धस्य समुद्र [यो भवति अय-]
- 7—[सु] च्यते धर्माणाम्=आचय धर्माणाम्=अपचय क्तम] [] तद् न भवत्यस्य निरोधादि [] निरुध्यते—
[]
- 8—नि[रो]ध मरुत्कार-निरोधाद्-विज्ञान-निरोधा विज्ञान निरोधान-ना [म-रुप-नि]रोधा नामरूप-निरोधात्-पडायतन-निरोधाः प [ड-आय तन निरोधात्-स्पर्श-निरोधा]
- 9—स्पर्श-निरोधाद्=वेदना-निरोधो वेदना-नि [रो]धात्-वृष्णा-]नि[रो]धा वृष्णा-]निरोधाद्=उपादा [न] निरोधा उपादान-निरोधाद्=भुव-निरोधा [भुव-निरोधाज्जाति-निरोधो]
- 10—जा[ति]-निरोधाज्जाता-मरण-शोक-[परिदेव]-दु ख-[दोर्मनस्यो] पाया सानिरुध्यन्ते पद्यम्-अस्य केवलस्य मह [तो] दु ख-[रुन्धस्य निरोधो]
- 11—भवति अयमुच्यते धर्मा [णाम्=अपच-] य धर्माणाम् वो भिन्न आ [चय] म् च देशयिष्यामी=अपचयम् च इति मे य [दुक्तम्=इदमे]
- 12—[त] त्=प्रत्युक्तमि [दमऽ] बोचद्=भगवाना [त्तम] नासस्ते भित्तवो भगवतो [भाषितम् अ]भ्यान्द [न् दे] यधर्मोयम् अने [क विहार]-स्वामिनो हरिवलम्य य [द=ऽ-
- 13—अ] पु [रयम्] तद् [=म] चतु मर्ष-सत्वानाम्=अनुत्तर-ज्ञानाघापत्ये साक्य [भि-] क्षुर्धर्मानन्दो सर्वत्रानुमोदते [] नि]र्वाण चैत्ये ताम्र पट्ट इति ॥

इस ताम्रपत्र का सास अर्थ इतना ही है कि “अनेक विहारों के स्वामी (कर्त्ता) हरिवल ने इस महापरिनिर्वाण चैत्य को बनाया है ॥”

(६) महापरिनिर्वाण मन्दिर के अन्दर भगवान् की मूर्त्ति के सिंहासन पर सुभद्र परित्राजक की एक छोटी मूर्त्ति है, ठीक उसी के नीचे एक शिला लेख अभी तक वर्तमान है—

१—देयधर्मोयम् महाविहारे स्वामिनो हरिवलस्य

२—प्रतिमाचेयम् घटिता दिने X X मा सु स्वारेण* ॥

* कुछ पुरातत्ववेत्तानों ने “माथुरेन” पढ़ा है । अर्थात्—इस बुद्ध प्रतिमा को बनाने-वाला मथुरावासी ‘दिन’ शिल्पकार था । और दाता वही हरिवल है, जो चैत्य को बनाया था ।

(७) मायाकुवर मन्दिर (वर्तमान, मायापावा) के दक्षिण दीवाल पर लगा हुआ एक काले रंग के पत्थर पर शिलालेख खुदा है। लेकिन अधिक सराब हो जाने के कारण पूरा नहीं पढ़ सका। शेष लेख इस प्रकार है—
ॐ नमो बुद्धाय । नमो बुद्धाय सिद्धाय ”

इस स्थान के मुख्य मन्दिर तथा वैष्णव धर्म का अन्त किस तरह हुआ ? इसको जानने के लिये पुरातत्त्व वेत्ता मि० ए० सी० एल्० कारलाइल् के रिपोर्ट का कुछ अंश नीचे दिया गया है—

“ but in the inner doorway of the temple itself I made an interesting discovery. In two hollows, one on each side, at the lower part of the doorway, I found the ancient cup shaped iron pivot hinges of the former doors, and with and adhering to the hinges I found some fragments of black charred wood, which showed that the doors had been destroyed by fire, and as numerous human bones and various charred substances were found in the outer chamber, as well as in both doorways, it was evident that Buddhism had here been annihilated by fire and sword ”

(From the Report of a tour in the Gorakhpur District By A O L Carlleyle, in 1875-76 & 1876-77, page, 62 and 63)

परिशिष्ट

शब्दानुक्रमणी ।

- अजपाल निग्रोध—(अजपाल बगैद, बुद्ध गया के समीप), ६७ ।
- अजात सत्तु—(अजातशत्रु, मगध का राजा) १ ।
- अजित केस कम्बल—(जड़वादी तीर्थ कर) १२४-५ ।
- अत्तदीपा—(एक प्रकार की समाधि), ५१ ।
- अनत्त सञ्जा—(अनारम वशा), १५ ।
- अन्तराय—(शत्रु), ३० ।
- अन्तिम उपदेश—७८ ।
- अन्तिम वचन—१३१ ।
- अपरिहाणिय धम्म—(अपतन के नियम), ३, ७, ८, ११, १६ ।
- अ प्रज्ञप्त—(गैरकानूनी), ४ ।
- अभिण्ह—(सम्मति के लिये बराबर बैठक), ३ ।
- अभिभायतन—आठ प्रकार की योग क्रिया), ६३ ।
- अभ्युत्थाय—(अम्बपाली गणिका), ४५ ।
- अम्बपालि उन—(अम्बपाली गणिका के आसना, वैशाली में), ४१, ४४ ।
- अम्बपाली गणिका—(अम्बपाली वेश्या, वैशाली में), ४३, ४७ ।
- अम्बलद्विषा—(सम्भवत वर्तमान सिलाव), १८ ।
- अरहन्त—(अहत्), ७१
- अरिय सन्धान—(चार आर्य सत्य), ३४ ।
- अरिय साजक—(बुद्ध के शिष्य), ३९, ४० ।
- अरिया—(आर्य=उत्तम) १७ ।
- अगार धूप—(कौयला स्तूप, पिंपलिवन में), १५२ ।
- आचरिय मुट्ठि—(आचार्य रहस्य), ५० ।
- आनन्द के गुण, ११३, ११७ ।
- आनन्द विलाप—, ११३ ।
- आपो सञ्जा—(जल वशा की भावना), ६० ।
- आयाधा—(बीमारी), ४९ ।
- आयु सञ्चार—(जीवन संस्कार), ६१ ।
- आरञ्जक सेनासन—(वन की कुटी) १२ ।
- आर्य अष्टांगिक मार्ग—, १२५ ।
- आलकमन्दा—(देवताओं की राजधानी), ११८ ।
- आलार कालाम—(एक ऋषि का नाम), ९१, ९२ ।
- आवसथ—(निवासस्थान), ३१ ।
- आवसथागार—(अतिथिशाला), २४ ।
- आहार—(जनपद, राज्य), ४५ ।
- उल्लङ्गल नगरक—(जगली नगरक), ११७ ।

- उपलगाव—(=रिषत देगा), ८ ।
 उपप्राण—(एक भिक्षु, जिन्का मगधान ने
 प्राणने सामने से दटा दिये ग), १०१ ।
 उरुवेला—(=उरुवेला वन, बुद्ध गया के
 पास में), ६७ ।
 ककुधा नदी—(पद्मरीना और कसपाथ
 बीच में), ६० ६६, १०० ।
 कामासय—(=काम भाग सम्बन्धी विच
 मल), १८ ।
 काल सिला—(राजगृह में), ७३ ।
 कुसावती—(=कुसिनारा का पुराना नाम),
 ११८ ।
 कुसिगारा—(=महारा की राजधानी), १०३
 कोटिगाम—(=कोटिगाम), ३४ ।
 कुद्वक नगरक—(=कुद्व नगर), ११७ ।
 कुद्वकुद्वक—(=छोटे छोटे), १२९ ।
 गङ्गानदी—(=गंगा नदी), ३३ ।
 गिञ्जकूट—(=यमकूट पर्वत, राजगृह
 में), १ ।
 गिञ्जकावसथ—(नातिका में), ३६ ।
 गोतम तिरथ—(गौतम-तीर्थ), ३२ ।
 गोतम द्वार—(गौतम द्वार, पटना शहर
 का एक द्वार का नाम), ३२ ।
 गोतम निम्रोघ—(राजगृह में), ७३ ।
 वक्रवर्ती के गुण—, ११६ ११७ ।
 वक्रवर्ती की दाह क्रिया—, ११० ।
 चतुमहाराजिन—(=चारदिग्पाल देवता),
 ६२ ।
 चापाल चैतिय—(चापाल चैतय, वैशाली
 में), ५२, ७०, ७५ ।
 चार धर्म—, ८०, ८१ ।
 चुन्द—, (=चुन्द भिक्षु), १००, (पावा
 में एक सागर), ८६ ।
 चौर पपात—(=राजगृह में) ७३ ।
 जीवक—(=राजगृह का राजपैत्र), ७३ ।
 जीवकम्बजा—(जीवक का दाग क्रिया
 द्वारा विदार), ७३ ।
 तपोदाराम—(गर्म जनवाली नदी में
 समीपवर्ती विहार, राजगृह में), ७३ ।
 तावतिस—(=श्रावस्त्रिय देवमोक्ष),
 ५५ ।
 तुम्य—(=तुया, अस्थि बाँटने का पात्र)
 १५२ ।
 तुम्य धूप (=द्रोण ब्राह्मण का तुम्य-रूप),
 १५२ ।
 तुदिसता—(=तुदित देवलोक), ६० ।
 थेर—(=थेयविर भिक्षु), ११ ।
 थेर तर—(उपसंग्घदा प्रव्रज्या में अधिक
 दिन का), १२९ ।
 दस शब्द—(कुशावती के), ११९ ।
 दुशाला दान—, ६७ ।
 दा धेष्ठ भोजन—१०२ ।
 धम्म चक्र—(=धम्म चक्र), ६१ ।
 धम्मदास—(=धम्म आदश) ३९ ।
 धम्मपरियाय—(=धम्म पर्याय), ३९ ।
 धम्म विणय—(=बुद्ध धम्म) ७९ ।
 धम्मिक चलि—(=धम्मिक दान) ६ ।
 धर्म गुण—४ ।
 धातु विमाज्ज—(कुसिगारा में), १४९ ।
 नातिका—३६ ।

- नालन्दा—(=वर्तमान बड़गाव, जि० पटना), १९, २३ ।
- निगण्ट गटपुत्त—(=महावीर), १२५ ।
- निग्याण—(=अ शेष विराग और आवा गमन रहित निर्वाण), ५५, १३३ ।
- नेरक्षरा—(=वर्तमान निलाजन, जि० गया), ६७ ।
- पकुध कच्चायन—(एक यशस्वी तीर्थंकर) १२५ ।
- परिवास—(=परीक्षार्थं वास), १२७ ।
- पाटलिगाम—(=पटना), २३, २६, ३० ।
- पावा—(=पट्टौना के पास 'पपउर'), ८६, ९२ ।
- पावारिक अश्वघ्न—(=प्रावारिक आम्र वन) १९ ।
- पुक्स—(एक मल्ल का नाम) ६१ ।
- पुरण कस्तप—(=पूर्ण काश्यप, अग्निवा वादी तीर्थंकर), १२४ ।
- घाराणसेम्यक—(=बनारसी बज्र), ६४, ६५ ।
- बुद्ध गुण—३६ ।
- बुद्ध सिद्धान्त—७८ ।
- बौद्ध तीर्थ—(धार दर्शनीय स्थान), १०८ ।
- ब्रह्मचरिय—(=बौद्धोपदेशित सदाचार), ५८ ।
- जहा दण्ड—(छन्द मिल्लु पो), १२९ ।
- भएडुगाम—८० ।
- भूमिचाल (भूकम्प के आठ कारण), ६० ।
- भोगनगर—(कुसिनारा के रास्ते में), ८२ ।
- मकुट-यन्घन—(वर्तमान रामाभार, कसया, जि० गोरखपुर), १४० १, १४५ ।
- मन्त्रलि गोसाल—(यशस्वी तीर्थंकर), १२४ ।
- मगध—(=विहार प्रांत), १, १४७, १५० ।
- मल्ल—(सैंधवार जाति, गोत्र वशिष्ठ), १०३, ११६, १२०, १२१, १३६, १४७, १४९, (पावा के मल्ल) १४९, १५२ ।
- महाकस्तप—(पावा और कुसिनारा के बीच में), १४३ ।
- महानगर—११७ ।
- महापद्मेन—(=कसौटी) ८२ ।
- महावन—(=मुजफ्फरपुर के आस पास के वन) ७७ ।
- महावन कूटागार शाला—(=बजरा, जि० मुजफ्फरपुर) ७७ ।
- महासुदर्शन—(=कुशावती वा चक्रवर्ती) ११८ ।
- महेसकख—(=एक शक्तिशाली देवता का नाम), २८ ।
- मातिका वर—(अग्निघर्म के परिहृत), ८४, ८५ ।
- मार—(=कामदेव) ५३—४ ।
- मारो पापिमा—(=पापी कामदेव) ५५ ।
- मिथुमेद्—(आपस में पूट) ८ ।
- यथाथ पूजा—१०५ ।
- यमक साल—(=बुद्धवे शाल वृत्त), १०४ ।
- राजगह—(वर्तमान राजगिर, जि० पटना), १, ७२ ।
- राजागारक—(अम्बलट्टिका में) १८ ।
- लिच्छवी—(=वैशाली के बज्जीगण) ४४, ४५, १४७, १५१ ।

- घञी—(= लिच्छवी, मुजफ्फरपुर, चम्पा
रन और दरभंगा जिले के अधिकारी
गण) १ ।
- घस्मकार—(मगध के महामंत्री वपकार
ब्राह्मण) २ ।
- घासिद्धा—(=मल्लों के गोत्र 'वशिष्ठ')
११६ ।
- विमोक्षया—(=निमोक्ष आठ) ६६ ।
- वेदेहिपुत्र—(=वैदेही रानी का पुत्र
अजातशत्रु राजा) १, १४७, १५० ।
- वेलुवन—(राजगृह में) ७३ ।
- वेलुवगामक—(अन्तिम वपावास का स्थान)
४८ ।
- वेसाली—(=वगाढ़, जि० मुजफ्फरपुर)
७, ८१, ५२ ५३, ७४ ५, ७७, १४७,
१५१ ।
- वैशाली-दर्शन—८० ।
- सत्रय वेलट्टपुत्र—(= एक अनिश्चित
वादी तार्किक) १२५ ।
- सति—(= स्मृति) ४१ ।
- सत्तपरिण गुहा—(= सत्तपर्णी गुहा,
जहाँ बौद्धों की प्रथम सभा हुई थी, राजगृह
में), ७३ ।
- सन्धागार—(कुसिनारा के मल्लों का
सभाभवन), १२० ।
- सम्पजान—(= सप्रजय) ४१ ।
- सम्बोज्झ—(= सात आवश्यक बातें)
१४, १५ ।
- सम्मा सम्भुद्ध—(= स्वयम् अच्छी तरह
जाननेवाले बुद्ध भगवान) २० ।
- सरीर पूजा—(कुसिनारा में), १४७ ।
- सघ गुण—, ४० ।
- सानन्दर धेतिय—(भोगनगर में) ७, ८२ ।
- सारिपुत्र—(= बुद्ध के प्रधान शिष्य) १९ ।
- सालवन—(कुसिनारा में) १९ ।
- सासन—(= धर्म) ८२ ।
- सीहनाद—(= सारिपुत्र का सिद्धनाद)
२० ।
- सुकर महव—(= सुधर का मांस या
शकरकन्द का पाक) ८७ ।
- सुनिध—(= मगध के मंत्री) २८, ३० ३ ।
- सुभद्—(= बुद्ध भिक्षु) १४४, (परिव्राजक)
१२२ ।
- स्तूप निर्माण—(अस्थियों का) १४७ ।
- स्तूप धाने योग्य—१११ ।
- स्त्रियो के प्रति बर्ताव—१०६ ।
- द्विरञ्जवती—(= वर्तमान् भेनानाला,
कुसिनारा के बगल में) १०३ ।

महापरिनिर्वाण सूत्र

(कुशिनगर का इतिहास)

यह प्रसिद्ध 'महापरिनिर्वाण सूत्र' का मूल और हिन्दी रूपान्तर है।
यदि बुद्धकालीन भारतीय राजनीतिक, सामाजिक और
धार्मिक स्थिति का अध्ययन करना हो, यदि पेशावो
के लिच्छवी, पपिलवस्तु के शास्य, कुशीनगर के
मल्ल आदि प्रजातंत्र राज्यों की व्यवस्था का
ज्ञान प्राप्त करना हो, और सबसे बढ़
कर यदि तद्गत के अतिम
दर्शन करने हों तो इस
सूत्र को पढ़ें।

पुस्तक मिलने का पता—

कित्तिमा,

बर्मा बौद्ध मन्दिर,

सारनाथ, बनारस ।

महाबोधि बुक एजेन्सी,

सारनाथ, बनारस ।